समर्पण !

श्री जैनधर्मान्तर्गत सद्धर्म प्रचारिणी श्री तारण तरण

समाज की सेवा में

प्रातः स्मरणीय

विद्वत्वर्य आचार्यों की पूज्य वाणियो के आदेशो का

संगृहीत ग्रन्थ विनीत लेखक द्वारा

सादर समर्पित ।

—पं० चम्पालाल जैन

प्रस्तावना

श्री मत्परम पूज्य अर्हन्त देव की दिव्य ध्वनि रूप वाणी को गण धरो प्रतिगणधरो आचार्यो और साधुओ द्वारा श्रावको के कर्णगोचर होती रहती थी, और परपरागत वाणी आचार्यो के शिष्यो द्वारा परपरा से ससार के भव्य प्राणियो को पठन–पाठन का स्वाध्याय कराती रही।

समय ने पलटा खाया शुभ समय अशुभ रूप मे परिणित हुआ आर ज्ञानावर्णी–कर्मो का क्षयोपशम करने की मनुष्य मे शक्ति न रही ताकि कैवल्य प्राप्त करते।

अव आचार्यो का भी अभाव है, जो भी है वे अपने ख्याति लाभ पूजा की चाह मे मगन है, धर्मोपदेश का क्वचित ही प्रचार कही–कही पत्रो द्वारा सुन लिया जाता है

करीव ५२६ वर्ष हुए हमारे चरित्र नायक परम पूज्य श्री तारण रण मडलाचार्य ने ज्ञान और श्रद्धान पर जोर देकर सच्चे देव आत्म व, सच्चे गुरु आत्मगुरु सच्चेधर्म आत्मधर्म का ज्ञानोपदेश देकर तारण थ की नीव डाली, और केवली प्रणित वचनो से स्वतत्र चौदह ग्रथो का र्माण कर अध्यात्मवाणी का इस प्रकार प्रचार व प्रसार किया कि जनकी आम्नायानुसार सच्चे तत्वज्ञानियो की सख्या ४३४५३३१ हो गई
(नाममाला ग्रथ से)

कालक्रमानुसार विक्रम स १५७२ जे०वदी ६ को स्वामी जी ने वात्मधर्म का उपदेश देते २ इस असार ससार से विदाली।
(१५०५–१५७२)

उनके अनुयायी तारण समाज बुंदेलखड और मध्यप्रात मे अपना अस्तित्व रखे हुए अध्यात्म वाणी का पठन–पाठन व स्वाध्याय करते है

आतम ही है देव निरजन आतम ही सद्‌गुरु भाई।
आतम शास्त्र-धर्म आतम ही तीर्थ आतम ही सुखदाई॥
आतम मनन ही है रत्नत्रय पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव,शास्त्र,सद्‌गुरुवर,धर्म,तीर्थ को सतत् प्रणाम॥

सर्व साधारण को लौकिक आलौकिक ज्ञान का विकास मिले और भयभीत संसार से पार हो जावें। इसी लिए साधारण भाषा में यह 'तारण तत्व प्रकाश' ग्रन्थ प्रकाशित किया जाता है॥

इसके ९ अध्यायों में निम्न प्रकार कथन किया गया है। उनको सर्व सज्जन वृन्द गुण को ग्रहण कर, दोष को त्यागकर हमारे भाव को दरसाने की कृपा कर 'तारण तत्व प्रकाश' के कुछ लेखक को कृतज्ञ करेंगे।

तारण तत्व प्रकाश का संक्षिप्त स्वाध्याय इस प्रकार है –

१. संसार स्वरूप – जहां चार गति रूप चेतन जीव का अचेतन शरीर से संबंध है। स्थावर त्रस के भेद से साधारण विवेचन सहित दिगंबर जैनाचार्यों व तारण तरण आचार्य के वचनों का तुलनात्मक रूप है।

२ शरीर स्वरूप – शरीरों के प्रकार, जीव और शरीर का संबंधादि जैनाचार्यों व तारण स्वामी के वचनों की तुलना की गई है।

३ भोग स्वरूप – भोग अतृप्तकारी, सुख के बाधक हैं। यह भी तुलनात्मक रूप है।

४ सुख स्वरूप – सच्चा सुख स्वाधीनता में है, जो आत्मा का धर्म है। स्वभाव-विभाव की छटा दिखा तुलना की गई है।

५ एकत्व स्वरूप – इस संसार में जीव अकेला ही जन्मता, मरता व कर्मफल भोगता है। जीव का अकेलापन बता जैनाचार्यों के वचनों की तुलना तारण स्वामी के वचनों से की गई है।

६. सुख के उपाय – सिर्फ ४ आत्मध्यान है इसमें ४ ध्यान, ५ धारणा ध्यान के साधन बता तारण स्वामी के वचनों की तुलना जैनाचार्यों के वचनों से की है।

७ सम्यग्दर्शन – संसार सागर से पार पाने की प्रथम सीढी है। इसमें ६ द्रव्य, ७ तत्व, ९ पदार्थ, ५ अस्तिकाय को जानने पर आत्मा की दशा, भाव समझ में आ जाते है।

मिथ्या भाव, छोड ससार पार पाने की ११ सीढी पर चल सम्यक्त सज्ञा से विभूपित हो कर्म सत्ता के नाश करने को अग्रसर हो जाता है। सच्चेदेव, गुरु, धर्म पर श्रृद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। इसका भी तुलना रूप वचनो का सग्रह है।

८ सम्यग्ज्ञान – ज्ञानरूप आत्मा है। ज्ञानावरणी कर्म के क्षय होने से आत्मा मे ही जागृत हो जाता है। तीन कुज्ञान नष्ट होकर पाच सुज्ञान का उदय होने लगता है। सप्तनयो के द्वारा द्वादशाग श्रुत का पारगामी हो कैवल्य पद को धारण करता है। यह भी तुलनात्मक वचनो का सग्रह है।

९ सम्यक् चारित्र– ही मनुष्य जन्म का 'मूल्य' है। इसमे गृहस्थ धर्म अणुव्रतरूप व साधु धर्म महाव्रत रूप वर्णन किया है। २२ परपिह सहनकर १२ तप पालता है १० धर्म को धारणकर अपने अभीष्ट स्थान मोक्ष के पाने का साधन कर लेता है। धर्म रत्न खरीदने को सरकारी सिक्का केवल "ज्ञान" है व चारित्र से ही ज्ञान की कीमत हुआ करती है – इसका भी सग्रह अचार्यों के वचनो के साथ स्वामी जी के वचनो का है।

इस ग्रथ के सग्रह करने मे इन आचार्यो के अमूल्य वचनो से वहुमूल्य सहायता मिली है। उनके प्रति लेखक विनम्र भाव से आभार प्रदर्शित करता है।

१ रचियता– श्री कुन्दकुन्दाचार्य– ग्रथ – द्वादशानुप्रेक्षा, अष्ट पाहुड, पचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार। २ श्री समन्त भद्राचार्य – रत्न करड श्रावकाचार, स्वयभूस्तोत्र। ३ श्री शिवकोटि आचार्य– भगवती आराधना। ४. श्री पूज्यपादाचाय– सर्वार्थ सिद्धि, समाधि शतक, इष्टोपदेश। ५ श्री गुणभद्राचार्य– आत्मानुशासन। ६ श्री पद्मनदि मुनि– अनित्यपचाशत, धम्म रसायन, धर्मोपदेशामृत, एकत्व सप्तति, सद्बोध चन्द्रोदय। ७ श्री अमितिगति आचार्य– तत्व भावना या वृहत सामायिक पाठ। ८ श्री शुभचन्द्राचार्य– ज्ञानार्णव। ९ श्री ज्ञानभूपण भट्टारक– तत्व ज्ञान तरगिनी। १० श्री स्वामी वट्टकेर आचार्य– मूलाचार।

११ श्री अमृत चद्राचार्य- समयसार कलशा, तत्वार्थ सार। १२ श्री नागसेन मुनि– तत्वानुशासन। १३ श्री पात्रकेसरी मुनि– पात्रकेसरी

जीवन के सागरिक उत्स मे जो सत्ता है उसकी थाह आप बुद्धि के तर्क से न तो सकोगे और न उन नाम की आखो से, उसके सत्य रूप का दर्शन कर पायेगे । उस एकत्व विभात के सत्य स्वरूप को देखने के लिये भेद विज्ञान की आँख ही समर्थ है । भेद विज्ञान की समर्थ आँख से जिसने अपने गहराई मे छिपे तारण तत्व को देखा है उसका जीवन सदा के लिये पराधीनता के कारागृह से मुक्त हो गया है ।

उस स्वतत्र पंछी ने, जन-जन की तो क्या ? कण कण की स्वतन्त्र सत्ता का आदर किया है । अज्ञानता और खोटी मान्यता की जेल मे जीवात्मा को मुक्त करने का प्रयास जिन जागृत आत्माओ ने किया है उनके ही अनमोल वचनो का रहस्य तारण तत्व प्रकाश मे छिपा है ।

अपने समय को विकथा मय जनरजन राग, कलरजन दोष, तथा मनरजन गारव से बचाकर (नष्ट न करके) उसका उपयोग जिन-रजन मे समर्पण करने वाले स्वाध्याय की जागृत प्रतिमा श्रद्धेय पडित चम्पालालजी ने इस तारण तत्व प्रकाश के अवतरण की प्रसव पीडा को जगत कल्याण की भावना से सहन किया है और हम पिपासु जनो की प्यास बुझाने हेतु ही यह गागर जीवन के अमृत कुण्ड में डुबोकर हमे प्रदान की है ।

जिसके जीवन मे सबेरा होने का समय बहुत ही पास आया हो वह इसका योग्य-उपयोग कर अपने तारण तत्व को पा सकता है ।

तारण तत्व प्रकाश को पाकर अपने अनुपम मोती को पाने की प्यास हो तो सौभाग्य समझना और साहस कर किनारा छोड एक छलाग निजत्व के सागर मे लगा देना । जो किनारा छोड छलाग लगा लेता है वह उस मोती को पाता है, जो अस्तित्व की गहराई मे विद्यमान है । जो नयातीत-विचारातीत है वह किनारे पर बैठे रहने से नही मिल सकता, उसे पाना हो तो सब को व्यर्थ जान सागर मे डुबकी लगा जाना अवश्य है । जीवन के योग्य दिशा बोध हेतु तारण तत्व प्रकाश का प्रसव हुआ है । मेरे अनुभव कुंज मे यह तारण तत्व प्रकाश चेतना का खिलता फूल है ।

दिनाक १६-७-७७
शनिवार

केसरीचन्द 'धवल'
कोथली (महाराष्ट्र)

दो शब्द

"तारण तत्व प्रकाश" नामक इस छोटी सी पुस्तिका में वयोवृद्ध प० चम्पालालजी ने ससार, शरीर, भोगो का स्वरूप बता कर इनसे निवृत्तिभाव के होने पर ही सुखानुभूति होती है । ऐसा निराकुलित सुखभोक्ता मानव ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र का पात्र बनता है । जो आत्मा इस रत्नत्रय का पालक हो जाता है, वही मोक्षमार्ग रूप आत्मीयसुख अर्थात आत्मीय आनद की अनुभूति को भोगता हुआ परम्परा से शाश्वत जो मोक्षसुख उसको द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता प्राप्त कर सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेता है । पडितजी ने ऐसे क्रम से ९ विषयो का सकलन अनेक आर्ष ग्रथो के प्रमाण से इसमे स्वय की अनुभूति पूर्वक बडे ही अच्छे ढग से सरल बोध भाषा मे किया है ।

पाठको का कर्त्तव्य है कि इस पुस्तक का अध्ययन-मनन तथा चिंतन कर ससार, शरीर और भोगो के स्वरूप को समझे और इनसे विरक्त होकर अपनी जिन्दगी को सुखी बनाकर रत्नत्रय की प्राप्ति करे तथा मोक्ष मार्गी बनकर परम्परा से मोक्ष को, शाश्वत सुख को प्राप्त करे । अपने जीवन को सफल करे ।

यही हमारी प्रेरणा मात्र तारण समाज को ही नही, मानव मात्र को है । इस परिश्रम के लिए पडितजी को धन्यवाद ।

दिनाक ३०-१-७८ ब्र. गुलाबचन्द्र

-० विषयानुक्रमणिका ०-

श्री वीतरागाय नम

तारण-तत्त्व प्रकाश

मंगला-चरण

ऋषभनाथ से वीर लो, श्री जिनवर चौवीस ।
मन-वच-तन वन्दन करूँ, नाऊँ तुव पद शीश ।।१।।
परमेष्ठी पाँचों नमूं, अर्हतादि महान ।
निज आतम में रमण कर, पाऊँ केवल ज्ञान ।।२।।
जिन वाणी पावन नमूं, आतम तत्त्व लखाय ।
छहों द्रव्य को जान के, निश्चय तत्त्व उपाय ।।

श्री स्वामी तारण तरण मडलाचार्य महाराज के साहित्य से तुलना करते हुए- यहा तारण-तत्त्व-प्रकाश-नामा, इस ग्रन्थ मे -

१ ससार २. शरीर ३ भोग ४. मुख ५. एकत्व ६ सहज सुख ७. सम्यग्दर्शन ८ सम्यग्ज्ञान ९. सम्यक् चारित्र इन विपयो का सक्षेप से जिनागमानुकूल कथन किया जाता है ।

तहा प्रथम ही संसार-स्वरूप का दिग्दर्शन इस प्रकार जानना.-

१

संसार–स्वरूप

जहा जीव भ्रमण करता रहता है, वह ससार है । जहा जन्म–मरण, रोग–शोक, भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, बाल–वृद्ध आदि बाधाये उपस्थित हो, ये तो शारीरिक दुख है और इष्ट-वियोग, अनिष्ट–सयोग, पीडा–चिन्तवन, ईर्ष्या, परिग्रह की चिन्ता, क्रोध, मान, माया, लोभादि मानसिक दुख विद्यमान है । वहा यह जीव नरक, तिर्यच, देव और मनुष्य गति–रूप भ्रमण करता है ।

१ **नरक गति**– नारकी जीव दीर्घकाल याने १० हजार वर्ष से लेकर ३३ सागर तक कभी भी सुखो को नही पाते हैं और परस्पर एक दूसरे को क्रोध-प्रहार, शस्त्र-प्रहार, काय-प्रहार से कष्ट देते रहते हैं । भूख-प्यास की वेदना सहते और सदा मरण की वाञ्छा रखते पक पूर्णायु भोगे विना छुटकारा नही पा सकते । वैक्रियक शरीर रख अनेक रूप करते है । इन्द्रियो के विषयो की तीव्रता रखते हुये भी शमन का साधन नही ।

कृष्ण नील कापोत लेस्याओ के धारक शरीर का स्पर्श, रस, गध, वर्ण, अशुभ वेदनाकारी, भूमि कर्कश, दुर्गन्ध-मयी, शीतोष्ण की बाधा वाली होती है । जो रौद्र ध्यानी होते हैं, वे ही नरक जाते है ।

रौद्र ध्यानी - १ हिंसा नदी – दूसरे प्राणियों को कष्ट देवे, दिलावे और कष्ट देते देख खुशी होवे ।

२ मृषा नदी – जो असत्य बोलकर, दूसरे से बुलाकर, वो बोलते हुये जानकर खुशी होवे ।

३ चौर्यानदी – जो चोरी करके, दूसरो से कराके चोरी की हुई जानकर खुशी होवे ।

४ परिग्रहा नदी – तृष्णावान् होवे, दूसरे को कष्ट देकर, धनादिक की लालसा करे, सो परिग्रहा नदी है ।

उपरोक्त चारो भाव वाले पुरुष नरक जाते है। जहा प्रथम नरक में १ सागर, २ रे में तीन सागर, ३ रे मे सात सागर, ४ थे मे दस सागर, ५ वे मे सत्रह सागर, ६ वे मे बाईस सागर और ७ वे मे तैतीस सागर पर्यन्त आयु पाकर मरण पाते हैं।

२. तिर्यंच – तिर्यच गति मे छः प्रकार के जीव पाये जाते हैं।

१ पृथ्वी कायिक, २ जल कायिक, ३ वायु कायिक, ४ अग्नि कायिक ५ वनिस्पति कायिक, ६. त्रस कायिक।

जिनमें पाच स्थावर एकेन्द्रिय हैं जो सब सचित दशा में हवा से जीते व बढते हैं और हवा न मिलने पर मर जाते है। खान की मिट्टी, नदी, कूप, तालाव का पानी, जलती अग्नि, समुद्र, सरोवर व उपवन की हवा, फल-फूल, पत्ता, शाखा, जड रूप वनिस्पति ये सब सचित्त है और सूखी मिट्टी, गर्म किया व रौंदा (मचाया) पानी, गर्म कोयलो की हवा, गर्म व धुये वाली हवा, सूखे, पके, गर्म यत्र से पेले लवण आदि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि वदलो वनिस्पति अचित है। दो इन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक त्रस कहते हैं।

इन तिर्यंच गति वो मनुष्य गति में कितने प्राणी तीव्र पाप के उदय मे लब्ध, पर्याप्त पैदा होते हैं जो सर्दी–गर्मी, पसीना–मलादि से सन्मूर्छन जन्म पाते हैं जो एक श्वास मे १८ वार जन्म–मरण करते हैं उनकी आयु श्वास के अठारहवे भाग होती है स्वस्थ मनुष्य की नाडी फडकन एक श्वास की होती है एक मुहूर्त मे ६६३३६ क्षुद्र भव-धारण कर जन्म–मरण का कष्ट पाते है।

आर्तध्यान – दुखित परिणामो को कहते हे। वह चार प्रकार है:–

१ इष्ट वियोग, २ अनिष्ट सयोग, ३ पीडा चिन्तवन, ४. निदान।

इष्ट-वियोग – प्रिय पुत्र, माता-पितादिक के मरण व धनादिक की हानि पर दुख होना इष्ट-वियोग आर्तध्यान है।

अनिष्ट सयोग – अपने मन को ना रुचने वाले नौकर, भाई, पुत्र, स्त्री स्थान, वस्त्र, भोग–उपभोगादि के मिलने व रुचने वालो के सम्बन्ध

पीडा चिन्तवन – शरीर मे रोग होने पर दुख से चिन्तित रहना।

निदान – आगामी भोग सामग्री प्राप्त हो उस चिन्ता से व्याकुल रहना। आर्त ध्यानी कभी उदास रहता, कभी रोता, कभी दुखी रहता है उसे भोजनपान नही रुचता, धर्म कर्म भी छोड देता है, अपघात तक कर लेता है और चारो पुरुषार्थों को मन नही लगाता है। इस माया चार से तिर्यंचायु का वन्ध करता है।

एकेन्द्रिय से चोइन्द्रिय तक कृष्ण, नील, कापोत तीन लेस्या रहती है व पचेन्द्रिय असैनी व सैनी के पीत-पद्म-शुक्ल सहित ६ लेस्या हो सकती है। खोटी लेस्याओ के भावो से तिर्यंचायु का वन्ध करते है।

देव गति– देव गति मे शारीरिक कष्ट नही है, परन्तु मानसिक कष्ट ज्यादा है। इसमे दस प्रकार के देव होते हैं।

१ इन्द्र– राजा के समान, २. सामानिक– पिता, भाई के समान, ३ त्रायस्त्रिंश– मत्री के समान, ४ पारिपद– सभा निवासी सभासद, ५ आत्मरक्ष– जो इन्द्र के पीछे खडे हो, ६ लोकपाल–कोतवाल के समान, ७ अनीक– सेना वनने वाले, ८ प्रकीर्णक– प्रजा के समान, ९. आभियोग– दास वनने वाले, १०. किल्विपक– कान्तिहीन क्षुद्रदेव जिनमे ईर्ष्या का भाव होता है। शरीर को अपना मान इन्द्रिय सुखो को सुख मान, आत्मा व अतेन्द्रिय सुख पर विश्वास न करना ही मिथ्या दर्शन के योग से मानसिक कष्ट भोगते हैं।

मनुष्य गतिः– इस गति के दुख प्रगट दृष्टिगोचर है। माता के रज, पिता के वीर्य से पैदा होना, नौ मास गर्भ मे उलटा लटकना, दुर्गन्ध स्थान में नरकवास सम दुखी होना है। पैदा होने के अनेक दुख वाल्य युवा, वृद्धावस्था के दुखो को कहते छोर नही आता है। सवसे ज्यादा दुख तृष्णा का है। पाँचो इन्द्रिय के सत्ताईस विपयो को भोगते जरा भी नही अघाता है।

यह ससार असार केले के खम्भवत् दु ख का घर है। इसमें जो मिथ्या दृष्टि वहिरात्मा मगन रहते हैं। यही भ्रमण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव से पाच प्रकार का है।

पंच परावर्तन

१ द्रव्य परिवर्तन – पुद्गल द्रव्य के सर्व ही परमाणु व स्कधो को इस जीव ने क्रम-क्रम से ग्रहणकर करके व भोग करके छोडा है। एक ऐसे द्रव्य परिवर्तन मे अनन्त काल विताता है।

२ क्षेत्र परिवर्तन – लोकाकाश का कोई प्रदेश शेष नही रहा, जहाँ यह क्रम क्रमसे उत्पन्न न हुआ हो। इस एक क्षेत्र परिर्तन से भी अधिक अनन्त काल बीता है।

३ काल परिवर्तन – उत्सर्पिणी जहा आयु काय सुख बढते जाते हैं। अवसर्पिणी जहा ये घटते जाते हैं। इन दोनो युगो के सूक्ष्म समयो मे कोई ऐसा शेष समय नही रहा जिसमे इस जीव ने क्रम क्रमसे जन्म व मरण न किया हो। इस एक काल परिवर्तन में क्षेत्र परिवर्तन से भी अधिक अनन्त काल बीता है।

४ भव परिवर्तन – चारो ही गतियो मे नौ ग्रैवेयिक तक कोई भव शेष नही रहा जो इस जीव ने धारण न किया हो। इस एक भव परिवर्तन मे काल परिवर्तन से भी अधिक अनन्त काल बीता है।

५ भाव परिवर्तन – इस जीव ने आठ कर्मों के बधने योग भावो को प्राप्त किया है। इस एक भाव परिवर्तन में भव परिवर्तन से भी अधिक अनन्त काल बीता है।

इस प्रकार पाचो परिवर्तन इस संसारी जीव ने अनन्त बार किये है।

इस ससार के भ्रमण का मूल कारण – ५ मिथ्या दर्शन, १२ अव्रत, १५ योग, २५ कषाय व प्रमाद है।

इस ससार को जैनाचार्यों ने कैसा बताया है जो नीचे लिखे वाक्यो मे प्रगट होगा।

१. छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठि सहस्सवार मरणाणि।
अन्तो मुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोय वा सम्मि ॥२८॥

भावार्थ - इस संसार मे कोई मनुष्य तो इन कुटुंब आदि [illegible] पदार्थों में रागी है। बहुत से छोटा भाई, पुत्र, स्त्री, पिता, माता, ग्राम घर, इन्द्रियभोग, पर्वत, नगर, पक्षी, वाहन, राजकार्य, अन्य पदार्थ, शरीर वन, सात व्यसन, खेती, कुआ, बावड़ी, सरोवर आदि मे राग करनेवाले है, बहुत से मनुष्य वस्तुओं को इधर उधर भेजने मे, [illegible] मे तथा पशुओं के पालन मे मोह करने वाले है, परन्तु शुद्ध आत्मा के स्वरूप के प्रेमी कोई नही।

(श्री ज्ञानभूषण भट्टारक-तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)

९ कवहुं चढत गजराज बोझ कवहू सिर भारो।
कवहु होत धनवंत कवहु जिम होत भिखारी ।।
कवहु असन लहि सरस कवहुं नीरस नही पावत।
कवहु वसन शुभ सघन कवहु तन नगन दिखावत।।
कवहु स्वछन्द वन्धन कवहु करमचाल वहु लेखिये।
यह पुन्य पाप फल प्रगट जग, राग-द्वेष तजि देखिये ।।५२।।

(पण्डित द्यानतरायजी-द्यानतविलास)

१० काहे को देह सो नेह करै तू अन्त न राखी रहेगी ये तेरी।
मेरी ये मेरी कहा करै लच्छिसो काहू की ह्वै के कहूं रहि तेरी ।।
मानि कहा रहो मोह कुटुम्ब सो स्वारथ के रस लागे लवेरी।
ताते तू चेत विवच्छन चेतन झूठि ये रीति सवै जग केरी।८८।

(भैया भगवतीदास-ब्रह्मविलास)

११. काल अनन्त निगोद मझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार ।।
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुख भार ।।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ।।
दुर्लभ लहि ज्यो चिन्तामनी, त्यो पर्याय लही त्रस तनी।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धरि धरि मर्‌यो सही बहु पीर ।।
कबहू पचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी है क्रूर, निर्वल पशु हति खाये भूर ।।

अति सक्लेश भावते मर्‌यो, घोर शभ्र सागर में परयो।

ये दुख बहु सागर लौं सहे, कर्म जोग तै नर तन लहे।
....
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर तन धरै-।

(दौलतरामजी–छैढाला)

१२. दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहीं न सुख संसार मे, सव जग देखो छान।

(भूधरदास-वारहभावना)

इस ससार स्वरुप को तारण स्वामी क्या कहते हैं।

१३. अदेवं अज्ञान मूढच, अगुरु अपूज्य पूजितं।
मिथ्यात्वं सकल जानन्ते, पूजा संसार भाजन ।।२४।।

भावार्थः– जिनमे देवत्व गुरुत्व नही है ऐसे देव और गुरुओ की पूजा ससार का कारण है और यही मिथ्यात्व है।

(पडित पूजा-पाठ से)

१४. संसार दुःख जे नर विरक्तं, ते समय शुद्धं जिन उक्त दृष्टं।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं, ते शुद्ध दृष्टी तत्वार्थ सार्धं ।४।

भावार्थ – जो मनुष्य दुखमयी संसार से विरक्त है वे ही शुद्धात्मा हैं जिनने जिनवर कथित वचनो पर विश्वास किया है उनने ही मिथ्यात्व मद, मोह, रागादि का नाश किया है वे ही तत्व के ज्ञाता शुद्ध सम्यक् दृष्टि आत्मा हैं।

(मालारोहण पाठसे)

१५. मन स्वभाव सं खिपनं, संसारे शरण भाव खिपियेन।
ज्ञान वलेन विशुद्धं, अन्मोयं विमल मुक्ति गमनं च ।।७।।

भावार्थ– मन की चचलता का स्वभाव ससार को वढानेवाला है ताको छिपाओ याने नष्ट करो ऐसे आत्मिक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य मे प्रीति कर मुक्ति के भाजन वनो।

(कमल वत्तीसी से)

१६. मन लेस्सा उत्पन्नं, इन्द्री वुध प्रान सुह असुहं।
पुग्गल सहाव उक्तं, कम्म निवन्ध जीव संचरणं । ७७७।।

भावार्थ - मन के संकल्प विकल्पों से तथा लेश्याओं से शुभ-अशुभ ज्ञानोपयोग तथा पांच इन्द्रियरूपी प्राणों का कार्य उत्पन्न हुआ है। पुद्गलों के स्वभाव से ही कर्म उत्पन्न हुए हैं। जिनसे बन्धा हुआ यह जीव चार गतियों भ्रमण किया करता है।

१७. सह कारेन संजुत्त, रचियं पुग्गल सहाय संजुत्तं ।
सरीर अवभासं, परिनं सहाव वृद्धि संप्रष्ठ ।७७८॥

भावार्थ - कर्म, शरीर के उदय के संयोग से तथा पुद्गल के स्वभाव के संयोग से रचा हुआ यह स्थूल शरीर प्रकाशमान हो रहा है जो परि-णमन स्वभाव है, बढ़ता है, पुष्ट होता है।

१८ कम्म उवन भावं, इन्द्री मन विषय बुद्धि सद्भावं ।
अप्प सहाव न सुद्धं, कम्म निबन्धो य जीव त भनियं ।।७७९

भावार्थ - कर्मों के उदय से उत्पन्न हुये, ये सब पदार्थ या भाव है जैसे पांच इन्द्रिय और उनकी इच्छायें, मन और उसके द्वारा होनेवाले संकल्प विकल्प, मतिज्ञान व श्रुतज्ञानरूपी बुद्धि ये कोई भी आत्मा के शुद्ध स्वभाव में नही है। जब तक ये है तब तक कर्मों से बंधा हुआ जीव को कहते हैं।

१९- अचेतं असुहावं, असत्यं असास्वतं विजानेही ।
अजीव तत्तु मनियं, पुग्गल भावेन सरनि संसारे ।.७८१॥

भावार्थ – जो ज्ञानशून्य है, जीव का स्वभाव नही है, जो सत्य परम.. स्वभाव से भिन्न असत्य है जिसका कार्य क्षणिक है ऐसा जाना जाता है उसको अजीव तत्व कहा गया है। इन्ही रागादि पौद्गलिक भावो के द्वारा कर्म पुद्गलो के द्वारा यह जीव संसार मे भ्रमण कर रहा है।

२०- इन्द्री शरीर सुभावं, अतिद्री ज्ञान जीव सहकारं ।
गुन दोस न विजानइ, अजीव तत्वंच मनंपि सहकारं ।।७८२॥

भावार्थ – ये पांचो इन्द्रिय, शरीर के स्वभाव के साथ व जीवके अति-न्द्रिय ज्ञान के साथ एकमेव वर्तन करती हुई अहित को नही समझती है। इन्द्रियों के द्वारा विषय की चाहनाएँ सब अजीव हैं। मन भी इन्द्रियों के कार्य में सहकारी है, यह भी अजीव तत्व ही है।

२१. अनादि काल भ्रमणं च, कुज्ञानं पश्यते वट्टः ।
ज्ञानं तत्र न दिष्टते, कोशो उदय भास्करं ॥१९॥

भावार्थ — यह अज्ञानी प्राणी अनादिकाल से संसार के अन्धेरे मे भ्रमण कर रहा है इसे मिथ्याज्ञान ही दिखता है वहा उसे सम्यग्ज्ञान नही दिखलाई पडता है जैसे बद घरके भीतर सूर्यका दर्शन नही हो सकता है ।

२२. ज्ञानं कुज्ञान एकत्वं, रजनी दिनकर यथा ।
यदि रजनी उत्पादंते, दिनकर अस्तंगत ॥२१॥

भावार्थ — सम्यग्ज्ञान तथा मिथ्याज्ञान की एकता रात्रि और सूर्य के समान है । जब रात्रि प्रगट होती है तब सूर्य अस्त हो जाता है ।

(ज्ञान समुच्चय सार)

२३. पाषिक रागं उत्तं, पषिभाव राग सभावं ।
संसार वृद्धि सहियं, दंसन विमलं च रागं गलियं च ॥१०८ ।

भावार्थ — एक प्रकार का पाक्षिक राग कहा गया है । ससार मे पक्ष-भाव के राग स्वभाव को रखने वाले अनेक प्राणी हैं, वे ससार को बढाते हैं । निर्मल सम्यग्दर्शन से ही ऐसा राग गल जाता है ।

२४. रागादि उववन्नं, राग सहावेन चोगए भमियं ।
रागं च विषय जुत्त, राग विलयं च विमल सहकारं ॥९०॥

भावार्थ — रागादि भाव जहा उत्पन्न होते हैं वहाँ राग राग स्वभाव मे आसक्त होने से यह प्राणी चारो गतियो में भ्रमण करता है । यह राग पाचो इन्द्रियो के विषयो में फसा रहता है । जब यह राग विलय हो जाता है तब निर्मल होने का सहकारी भाव पैदा होता है ।

२५ रागं असुद्ध दिट्ठी, संसय सहकार अंतरं ज्ञानं ।
सक सहाव न विरय, ज्ञानं आवरन चउ गए गमनं ॥९८॥

भावार्थ — ससार का राग अशुद्ध दृष्टि को है ऐसे रागी के ज्ञान मे सशय रहता है । इस शंका-शील स्वभाव के न छोडने से ज्ञान पर पर्दा पडा रहता है और अज्ञान भाव से जो क्रियायें करता है उसी के अनु-कूल पुण्य व पाप बाधकर चारो गतियो में जाता है ।

२६. राग च राग युत्तं, स्त्री पर्याय पुरुष मल सहियं ।
अज्ञान ज्ञान मूढा, संशय सहिय नरय वासम्मि ।।१०१।।

भावार्थ – कभी कभी दो चार स्त्रियां तीव्र राग भाव से एक स्त्री में पुरुष की कल्पना कर कुचेष्टाएं करती है । उस अज्ञान व मूढ़ता से तीव्र राग के कारण घोर पाप का बन्ध कर नरक जाती है ।

२७. रागं च सहिय सल्यं, दुबुहि उववन्न मिच्छ परिनामं ।
जनरंजन जिन उत्त, जिन द्रोही निगोय वासम्मि ।।१०३।।

भावार्थ – जो राग भाव मे सल्य को रख दुर्बुद्धि युक्त मिथ्यात्व भाव रखता है और लोक रजायमान कार्य करता है वह जिनेन्द्र के वचनो का उल्लघन कर निगोद मे जाता है ।

२८ रागं उववन्न भावं, रागं संसार शरणि सद्भाव ।
पर्याय दिट्ठ दिट्ठं, विमल सहावेन राग सक्षिपनं ।।१०६।।

भावार्थ – जो राग ससार को वढाने वाला है ऐसा रागी पर्याय पर दृष्टि रखता है । निर्मल स्वभाव होने पर राग क्षय हो जाता है ।

२९. जन उत्तं उत्त दिट्ठं, जम्मन मरनं च शरणि संसारे ।
मूढ लोयस्सहावं, ज्ञान विज्ञान राग विलयंती ।।१०७।।

भावार्थ – ससार मे मनुष्यो को कहते सुना है कि इस ससार मे इसी तरह जन्म मरण होता है । मूढ लोगो का ऐसा ही स्वभाव है । भेद विज्ञान के प्रताप से यह मूढ राग नष्ट हो जाता है ।

(उपदेश शुद्धसार से)

३०. संसारे भय दु.खानां, वैराग्यं येन चिंतये ।
अनृतं असत्य जानते, अशरणं दुःख भाजनं ।।९५।।

भावार्थ - भय और दु खों से भरे हुए ससार मे उस मुमुक्षु द्वारा वैराग्यभाव चितवन किया जाता है । यह ससार मिथ्या है, अशरण है दु खो का भाजन है ।

३१ असद्ऽशाश्वतं दृष्टं, संसारं दुःख भीरुदं ।
शरीरं अनित्यं दृष्टं, अशुच्यमेध्यपूरितं ।।१६।।

भावार्थ – इस चतुर्गति भ्रमण रूप संसार को असत्य–अयथार्थ कल्पित, क्षण-भगुर–नाशवन्त व दु ख तथा भय को देनेवाला देखना चाहिये। इस शरीर को न रहनेवाला–क्षणिक, मल मूत्रादि से भरा हुआ अपवित्र देखना चाहिये।

३२. अनादि भ्रमते जीवः, संसारे सारवर्जिते।
मिथ्यात्रितय सपूर्ण, सम्यक्तं शुद्ध लोपन ॥१८।

भावार्थ – सार रहित असार ससार में अनादि काल से यह जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन को लोप करने वाले तीन प्रकार मिथ्यादर्शन को धारणकर भ्रमण करता है।

३३. मिथ्यादेवं गुरू धर्म, मिथ्या माया विमोहित।
अनृतम् चेतरागं च, संसार भ्रमणं सदा ॥१९॥

भावार्थ – मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्म व मिथ्यात्व के वश हो झूठे पदार्थों मे राग भाव कर ससार मे जन्म-मरण करता है।

३४. मिथ्यादशनं ज्ञानं, चरणं मिथ्या उच्यते।
अनृत राग संपूर्णम्, संसारे दुःख बीजक ॥२१॥

भावार्थ – ससार के राग भाव से भरा ज्ञान मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्या चारित्र ये ही ससार में दुखो के उत्पन्न करने वाले बीज हैं।

(श्रावकाचार मे)

३५. चौगय भ्रमत दु ख भव भारी, सुख न कवहूं पायो।
ऐसे काल तारण जिन उवने, मुक्ति पन्थ दरसायो ॥३॥

भावार्थ – चारो गतियो में भ्रमण करते हुए हर एक जन्म में भारी दु:ख उठाये है, कही भी कुछ सुख नही पाया। ऐसे समयमे जव भव्य जीव दुखी हो रहे थे तव भव से उद्धार करने वाले तारण स्वामी ने मोक्ष का मार्ग दिखाया।

३६ काल पंच मो चपल अनिष्ट है, इष्ट दिष्टि नहि उपजै।
ज्ञान वले न इष्ट संजोए, भय शिपनिक कम्म विलोजै ॥४॥

भावार्थ – यह पचम दुखमा काल आकुलतामय तथा अनिष्ट निमित्तो से पूर्ण है। इसमें हितकारी सम्यग्दर्शन शीघ्र नही उत्पन्न होता है। तो भी ज्ञान के अभ्यास के वल से आत्म हितकारी सम्यग्दर्शन का सयोग होता है तव सर्व भय नाश हो जाता है और कर्मो का क्षय होने लगता है।

३७ संशय शरणिऽनन्त मव मारी, भयह् दिष्टि भव भ्रमि जं ।
भय विनाश भव्य तव् उवनो, कम्म उवन खिपीजं ।।५।।

भावार्थ – तत्वो मे सशय रखने से अनन्तबार मरण किये है व तीव्र भय की दृष्टि रखते हुए रातदिन मरण व दुःखो से डरते हुए ससार मे भ्रमण किया है । जब सब भयो को दूर करने वाला आनन्दप्रद सम्यग्दर्शन पैदा हो जाता है तब बधे हुए कर्म क्षय होने लगते है ।

(ममल पाहुड़–निसती फूलना)

३८. मिथ्या दर्शनं न्यान, चरन मिथ्या दृष्टते ।
अलहन्तो जिन उत्तं, निगोयं हल उच्यते ।।१६।।

भावार्थ – मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन ज्ञान सहित चारित्र मिथ्या देखा जाता है । इन तीनो मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र मे फसा हुआ प्राणी जिनेन्द्र कथित सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी रत्नत्रय मार्ग को न पाकर अज्ञान से वह प्राणी निगोद का पात्र हो जाता है ऐसा कहा गया है ।

३९. अशुद्धऽभाव संयुत्तं, मिश्रभाव सदारता ।
संसारं भ्रमण बीजं, त्रिभंगी असुह उच्यते ।।२४।।

भावार्थ - अशुद्धभाव, नास्तिक भाव तथा मिश्र भाव इन तीनो भावो मे लवलीन होने वाले जीव ससार के भ्रमण के बीज है । ये तीन भाव अशुभ कहे जाते है ।

४०. आशा स्नेह आरक्तं, लोभं संसार बंधन ।
अलहन्तो न्याय रूपेन, मिथ्या माया विमोहतं ।।२७।।

भावार्थ – जो आशा, तृष्णा मे व ससार के प्रेम मे लवलीन रहते है ससार का बधन करने वाले लोभ मे पड जाते है आत्म ज्ञान को नही पाकर मिथ्यादर्शन तथा मायाचार मे मूढ बने रहते है ।

४१. कर्मादि कर्म कर्त्तव्यं असमाधि मिथ्या संयुत्तं ।
अस्थिति अशुद्ध परिणामं त्रिभंगी संसार कारणं ।।३२।।

भावार्थ – मिथ्यादर्शन के साथ मन, वचन काय के द्वारा कार्य करते रहना तथा आत्मध्यान का लाभ न पाना ये तीनो भाव ससार भ्रमण के कारण है ।

(त्रिभगी सार से)

२

शरीर-स्वरूप

इस ससार में जितनी आत्माए है, सब शरीर के सयोग से है। यदि शरीर का सम्बन्ध न होता तो सब आत्माए सिद्ध परमात्मा हो जाती और ससार का अन्त हो जाता, इससे मालूम हुआ कि आत्मा शरीर का सम्बन्ध दुग्धपानीवत् है। आत्मा सूक्ष्म अतिन्द्रिय पदार्थ हैं। शरीर जड वो मूर्तिक परमाणुओ से बना है। ससारी आदमियो को देखने मे आत्मा का विश्वास भी नही होता है क्योकि रात-दिन शरीर के ही सस्कारो को जुटाता है आत्मा की ओर लक्ष्य भी नही करता है। विचार किया जावे तो शरीर सडन-गलन, पडन मिलन-विछुड़न स्वभाव वाला है। जबकि आत्मा चैतन्य अखण्ड, अविनाशी, अजात, अजर-अमर अमूर्तिक, ज्ञाता, दृष्टा सत् चित्-आनन्द-मय है।

ससारी जीवो के ५ प्रकार क शरीर पाये जाते हैं –

१. कार्माण:– कार्माण शरीर कार्माण वर्गनारूपी स्कन्धो से बनता है जिसका कारण राग-द्वेष, मोहमयी भाव, मन-वचन-काय योगो का हलन-चलन है।

२. तैजस – शरीर बिजली कैसी शक्ति को रखनेवाली तैजस वर्गना-रूपी स्कन्धो से बनता है।

३. आहारक – शरीर तपस्वी, ऋषि, मुनियो के योग बल से बनता है पुरुषारक १ हाथ ऊंचाई का पुतला सफेद रग मस्तक मे निकलता वो अन्त मूहूर्त्त तक रहता है शुभ भावेसि शका समाधान करना, वो अशुभ भावो से अपना वो पराया क्षय करता है।

४. वैक्रियकः– नारकीय देवो के होता है जो जीवन-पर्यन्त रहते वो छूट जाते हैं।

५. औदारिक.– तिर्यंच और मनुष्य गति वाले स्थूल शरीर को कहते है।

देवो के शरीर

देवो के स्थूल शरीर वैक्रियक है जो अन्त मुहूर्त में नाम

कर्म के उदय से सुगन्ध से व आहारक वर्गना से बनता है । ५ इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहकर काल पूर्ण करते है । देव-देवी अनेक प्रकार शरीर बनाकर राग-रग में मग्न हो शरीर रूप अपने को मान आर्त-ध्यान से मरन कर एकेन्द्रिय तक हो जाते है जहा से देव होना फिर कठिन हो जाता है ।

तिर्यच शरीर – पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, कायादिक का शरीर आहारक वर्गण से बनता है ये कुछ शुद्ध वर्गणा है ।

वनस्पति का शरीर पृथ्वी कायादिक धातुओ से व आहारक वर्गणा से बनता है । विकलत्रय व पशुओ का शरीर अनेक प्रकार अच्छी-बुरी वर्गणा से बनता है । असैनी पचेन्द्रिय के मन रहित वो सैनी पचेन्द्रिय मन सहित होकर भी हिताहित का ज्ञान कम रखते है ।

मनुष्य शरीर – कर्म भूमि के मनुष्यो का शरीर अच्छे-बुरे आहारक वर्गणाओ से बनता है । माता की रज वो पिता के वीर्य मे गर्भ जन्म पाता है । विग्रह गति से आया हुआ जीव मनुष्य गति मे एक साथ आहारक, भाषा, वचन वर्गणा को ग्रहण करता है जब आहार, शरीर इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा, मन बनने की शक्ति का विकास नही होता तब अपर्याप्त वो फिर पर्याप्त हो जाता है ।

मनुष्य का शरीर ९ मास के अनुमान, महान कष्ट से पूरा बनता है । तब तक गर्भ मे उल्टा रहना पडता है । माता के खाये खाद्य पदार्थ के रस से बढता है अगोपाग सकोच झिल्ली मे बन्द रहता है । गभ से निकल बाल्य-काल बडी कठिनाई से माता द्वारा पाला जाता है । भूख-प्यास के दुख व मल मूत्र मे अपने को सान लेता है इस ७ धातु (रस, रुधिर, मास, मेद(चर्वी)हाड़, मज्जा, वीर्य) है जो १ मास मे तैयार होता है । व उपधातुऐ ७ है– वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म, उपराग्नि इनके भरोसे शरीर बनता है । शरीर मे ९ बड़े द्वारो से मैल निकलता है । बालपन जवानी मे सुन्दर व बुढापे मे असुहावना लगता है । अनगिन्ती रोगो का घर वो छूटने का नियम नही है । सयम का साधन केवल इसी शरीर से होता है । देव नारक सयम नही पाल सकते । देव नारकीय पूर्णायु मे मनुष्य तिर्यंच कर्म भूमि के अकाल मरण कर जाते हैं ।

यदि यह आत्मा धर्म-रत्नों से पूर्ण हो तो यह अशुचि शरीर भी देवों कर पूज्य हो जाता है।

सम्यक् के प्रकाश में जाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए-इस शरीर को जैनाचार्यों ने कैसा बतलाया है.-

१. कललगदं दसरत्तं, अच्छदि कलुसीकद च दसरत्तं ।
थिरभूदं दसरत्तं, अच्छदि गब्भम्मि तं वीयं ॥ १००६ ॥

२. तत्तो मासं बुव्बुद भूदं, अच्छदि पुणो विघणभूद ।
जायदि मासेण तदो, यं मसपेशी य मासेण ॥ १००७ ॥

३. मासेण पंच पुलगा, तत्तो हुंति हु पुणो वि मासेण ।
अंगाणि-उवंगाणि य, णरस्स जायति गब्भम्मि ॥ १००८ ॥

४. मासम्मि सत्तमे तस्स, होदि चम्मणहरोमणीप्पत्ती ।
फुंदण मट्ठम मासे, णवमे दसमे य णिग्गमणं ॥ १००९ ॥

५ सव्वासु अवत्थसु वि, कललादोयाणि ताणि सव्वाणि ।
असुईणि अमेज्झाणि य, विहिंसणिज्जाणि णिच्चंपि ॥ १०१० ॥

भावार्थ – गर्भ में माता का रुधिर, पिता के वीर्य मे मिला हुआ दश रात्रि तक हिलता रहता है, फिर दश रात्रि काला होकर ठहरता है, फिर दश दिन में स्थिर होता है, फिर दूसरे महीने मे बुदबुदा होकर ठहरता है, तीसरे मास मे वह कठोर होकर ठहरता है, चौथे मास में मास की डली होकर ठहरता है। पाँचवे मास में उस मास की डली मे पाच पुलक निकलते हैं- एक मस्तक का आकार, दो हाथो का, दो पगों का आकार। छटे मास में मनुष्य के अगोपाग प्रगट होते हैं। सातवें मास में चाम, नख, रोम की उत्पत्ति होती है। आठवे मास मे गर्भ मे कुछ हिलता है। नवमे व दसवें मास मे गर्भ से निकलता है। ऐसे जिस दिन गर्भ में माता का रुधिर, पिता का रुधिर हुआ, उसी दिन से यह जीव महा मलीन दशा मे ही रहा।

६. अट्ठीणि होंति तिण्णि दु, सदाणि भरिदाणि कुणिममज्जाए ।
सव्वम्मि चेव देहे संधीणि सवंति तावदिया ॥ १०२६ ॥

७. ण्हारुण णवसदाइं, सिरा सदाणि हवंति सत्ते व ।
देहम्मि मंसपेशी,- णि होंति पंचेव य सदाणि ॥ १०२७ ॥

८ चत्तारि सिराजाला,- णि होंति सोलसय कंडराणि तहा ।
छच्चे व सिराकुच्चा, देहे दो मंसरज्जू य ॥ १०२८ ॥

९. सत्त तयाओ काले- जयाणि सत्तेव होंति देहम्मि ।
देहम्मि रामकोडी,- ण होंति असोदी सयसहस्सा ॥ १०२९ ॥

१०. पक्कामयासयत्था य अंतगुंजाऊ सोलस हवंति ।
कुणिमस्स आसया स,-त्त होंति देहे मणुस्सस्स ॥ १०३० ॥

११. थूणा उ तिण्णि देह- म्मि होति सत्तत्तरं च मम्मसदं ।
णव होंति वणमुहाइं, णिच्चं कुणिमं सवंताइ ॥ १०३१ ॥

१२. देहम्मि मत्थुलिंगं, अजलिमित्त सयप्पमाणेण ।
अंजलि मेत्तो मेदो, ओजो वि य तत्तिओ चेव ॥ १०३२ ॥

१३. तिण्णी य वसंजलो ओ, छच्चे व य अंजलीउ पित्तस्स ।
सिमो पित्त समाणो, लोहिद मद्धादयं हवदि ॥ १०३३ ॥

१४. मुत्तं आढ्यमेत्त, उच्चारस्स य हवंति छप्पत्था ।
वीसं णहाणि दंता, वत्तीसं होंति पगदीए । १०३४ ॥

१५. किमिणो व वणो भरिदं, शरीरियम किमि कुलेहि बहुगोहि ।
सव्वं देहं अप्फुं- दिऊण वादा ठिदा पंच ॥ १०३५ ॥

१६. एवं शव्वे देह,- म्मि अवयवा कुणिमपुग्गला चेव ।
एक्कं पिर्णोत्थ अंगं, पूयं सुचिय य जं होज्ज ॥ १०३६ ॥

भावार्थ :- इस देह में सडी हुई भीजी मे भरे तीन सौ हाड हैं, तीन सौ ही संधिए है । नव सौ (स्नायु) नसे है, सात सौ छोटी (सिरा) नसे हैं पाच सौ मांस की डली हैं, चार नसों के जाल हैं, सोलह कंडरा है छ- सिरामूल है, दो मास की रस्सी है, सात त्वचा है, सात कलेजे है अस्सी लाख करोड रोम है, पक्काशय व आमाशय मे तिष्ठती सोलह आतो की पंक्ति है, सात मल के आश्रय है, तीन स्थूणी है एक सौ सात मर्म स्थान है, नव मल निकलने के द्वार है । देह मे मस्तिष्क अपनी एक अजली प्रमाण, एक अजली प्रमाण मेद धातु है, एक अजली प्रमाण वीर्य है, मास के भीतर चर्वी या घी अपनी तीन अजली प्रमाण है, पित्त छ- अजली प्रमाण है, कफ भी छ अजली प्रमाण है, रुधिर आध आढक प्रमाण है, आधमेर का आढक होता है, मल छ. सेर है, देह में वीस नख हैं । वत्तीस दांत हैं । यह प्रमाण सामान्य कहा है, विशेप हीन व

अधिक भी होता है, देश काल रोगादि के निमित्त से अनेक प्रकार है सडे हुए घाव की तरह बहुत कीड़ो मे भरा हुआ यह देह है, सर्व देह को व्यापकर पाच पवन है। ऐसे इस देह में सर्व ही अग व उपंग दुर्गन्ध पुद्गल है। इस देह में ऐसा एक भी अंग नही है जो पवित्र हो, सर्व अशुचि ही है।

१७. जदि दा रोगा एकम्मि, चेव अच्छिम्मि होंति छण्णउदी।
सव्वम्मि चेव देहे, होदव्वं कदिहि रोगेहि ॥ १०५३ ॥

१८. पंचेव य कोडीम्रो, अट्ठासट्ठि तहवे लक्खाइं।
णव णवदि च सहस्सा, पंचसया होंति चुलसीदो ॥ १०५४ ॥

भावार्थ ।- जो एक नेत्र में ९६ (छानवे) रोग होते हैं तो सम्पूर्ण देह में कितने रोग होते। पांच करोड अडसठ लाख निन्याणवे हजार पाच सौ चौरासी ५६८९९५८४ रोग देह में उपजने योग्य होते हैं।

(श्री शिव कोटी आचार्य – भगवती आराधना)

१९. भवति प्राप्य यत्संगम शुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥ १८ ॥

भावार्थ :- यह शरीर निरन्तर क्षुदाधि मे पीड़ित रहता है व नाशवन्त है। इसकी सगति को पाकर पवित्र भी भोजन वस्त्रादि पदार्थ अपवित्र हो जाते है। ऐसे नाशवन्त व अपवित्र शरीर के लिए धनादि की वाञ्छा वृथा है।

(श्री पूज्यपाद स्वामी – इष्टोपदेश)

२०. अस्थि स्थूल तुला कलापघटितं नद्धं शिरास्नायुभि-
र्चर्माच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्तं सुगुप्तं खलैः।
कर्मारातिभिरायुरुच्च निगलालग्न शरीरालयं
कारागार मवेहि ते हतमते प्रीतिं वृथा मा कृथा ॥ ५९ ॥

भावार्थ :- हे निर्बुद्धि ? यह शरीर रुप घर तेरा बन्दी घर के समान है इससे वृथा प्रीति मतकर। यह शरीर रूपी कैदखाना हड्डी रूपी मोटे पाषाणो से घड़ा हुआ है, नसो के जाल रूपी बन्धनो से वेढा हुआ है, चमडे से छाया हुआ है, रुधिर व मांस से लिप्त है, उसे दुष्ट कर्म रूपी वैरी ने रचा है इसने आयु कर्मरूपी गाढ़ी बेडी है।

२१ माता जाति. पिता मृत्युराधि व्याधी महोवृगतो ।
प्रान्ते जन्तोर्जरा मित्रं तथा प्याशा शरीर के ।।२०१।।

भावार्थ.– इस शरीर की उत्पत्ति तो माता है, मरण इसका पिता है, मानसिक शारीरिक दुःख उसके भाई है, अन्त मे जरा उसका मित्र है तो भी इस शरीर मे तेरी आशा है यह बडा आश्चर्य है ।

(श्री गुण भद्राचार्य– आत्मानुशासन)

२२. तैरेव फल मे तस्य गृहीतं पुण्य कर्मभि ।
विरज्य जन्मनः स्वार्थे यैः शरीरं कदर्थितम् ।।९।।

भावार्थः– इस शरीर के प्राप्त होने का फल उन्होने ही लिया, जिन्होंने ससार से विरक्त होकर अपने अपने आत्मकल्याण के लिए ध्यानादि पवित्र कर्मो से इसे क्षीण किया ।

(श्री शुभचन्द्राचार्य – ज्ञानार्णव)

२३. रेतकी सी गढी किधों मढी है मसान कीसी,
अन्दर अधेरी जैसी कन्दरा है सैल की ।
ऊपर की चमक दमक पट भूषण की,
धोखे लागै भली जैसी कली है कनैल की ।।
औगुन की ओडी, महा मोडी मोह की कनोडी,
माया की मसूरति है मूरति है मैल की ।
ऐसी देह याही के स्नेह या की सगति सो,
हो रही हमारी मति कोल्हू कैसे बैल की ।।७८।।

(प० बनारसीदास – समयसार नाटक)

२४. वे दिन क्यो न विचारत चेतन,
मात की कूंख में आय वसे हैं ।
अरध पाऊं लगे निशिवासर,
रच उसासन को तरसे हैं ।
आयु संयोग बचे कहु जीवत,
लोगन की तब दृष्टि लसे है ।
आज भये तुम जीवन के रस,
भूल गये कितते निकसे है ।।३२।।

(प० भैया भगवतीदास – ब्रह्मविलास)

२५. दव्व कम्म आवरन ऊपजै, सल्य संक भय ओतं ।
ज्ञानावर्तं ज्ञान तं विलियो, भय खिपिय सिद्धि संपत्तं ।।६।।

भावार्थ – मिथ्यात्व के होते हुए, शल्य, भय व शंकाओं से भरे हुए होने के कारण से द्रव्य कर्मों का आवरण बन्ध किया है अर्थात ज्ञानावरणादि कर्मों को बांधा है परन्तु सम्यक्ज्ञान के अनुभव से सर्व भय क्षय हो जाता है व द्रव्य कर्मों का क्षय होकर सिद्ध पद का लाभ हो जाता है।

(ममल-पाहुड – विन्तीफूलना)

२६. जो चेतना लक्षणो चेत नेत्वं,
अचेतं विनासो असत्यं च त्यक्तं ।
जिनोपत सत्य सु तत्वं प्रकाशं,
ते माल दृष्टं हृदि कंठ रुलितं ।।३०।।

भावार्थ – जो चेतना लक्षण मय आत्मा को अनुभव करनेवाले है और जो विना सीक असत्य अनात्मा के अनुभव से शून्य हैं व जिन्हे जितेन्द्र कथित शुद्ध तत्व का प्रकाश हो रहा है उन्होने ही अपने हृदय कण्ठ में गुण माला को शोभित किया है ।

(मालारोहण)

२७. वैराग्यं तिविह उवन्नं,
जन रंजन राग भाव गलियं च ।
कल रंजन दोष विमुक्तं,
मन रंजन गारवेन तिक्तं च ।।८।।

भावार्थ – राग तीन प्रकार से होता है, जनरजन राग, कल रजन दोष और मन रदन गारव । जिन्होंने ससार के मनुष्यों को विषयों में रजायमान करने वाले ऐसे राग भाव को नाश करके वैराग्यरूपी बड़े भारी उपवन में प्रवेश किया है तथा कल नाम शरीर सम्बन्धी पांचों इन्द्रियो के विषयो के मन की चचलता को जो संसार के विषयों मे राग-युक्त करनेवाली है त्याग कर दिया है ऐसे देव को मैं नमस्कार करता हूँ ।

(ममल पचीसी पाठ)

२८. मिथ्या तिक्तं तृतीयंच कुज्ञानं त्रति तिक्तं यं ।
शुद्ध भाव शुद्ध समयं, सार्धं भव्य लोक यं ।।३१।।

भावार्थ – तीन प्रकार दर्शन मोह को छोड़कर व कुमति, कुश्रुति, कुअवधि तीन प्रकार कुज्ञान को छोड़कर भव्य जीव शुद्ध भाव व शुद्ध आत्मा का ग्रहण करे।

(पंडितपूजा पाठ से)

२९. अनंत काल भ्रमनं च, अदेवं देव उच्यते ।
अनृत अचेत दिष्टते, दुर्गति गमन संजुत ।।६२।।

भावार्थ.– जो अदेवो को देव कहते है उनका अनन्त काल तक ससार मे भ्रमण होगा। यह अदेव मिथ्या रूप माने हुए देव है सम्यक् ज्ञान रहित जड है ऐसे दिखलाई पड़ते हैं इनकी भक्ति खोटी गति में गमन का कारण है।

३०. अनृतं तु सत्य मानते, विनाश यत्र जायते ।
ते नरा थावरं दुखं, इन्द्रियाधीन भाजनं ।।६३।

भावार्थः– जहां नाश होता है ऐसे मिथ्या को ही जो सच मान बैठते हैं, वे मानव स्थावर काय सम्बन्धी एक स्पर्शनेन्द्रिय के आधीन क्लेशो के पात्र होते है।

३१. कुगुरुं प्रोक्तं येन, वचनं तद्विश्वासनं ।
विश्वासं ये च कुर्वन्ति, ते न । दुर्गति भाजनं । ९०।

भावार्थ – जो कोई कुगुरु की सगति करते है और भय, लाज, आशा, प्रेम व लोभ के कारण उनका प्रतिष्ठा करते है। वे मनुष्य कुगति के पात्र है। कुगुरू द्वारा जो कुछ कहा गया वह वचन विश्वास करने योग्य नही है और जो कोई उनका विश्वास करते है, वे मनुष्य कुगति के पात्र हैं।

(श्रावकाचार से)

३२. देवं गुरुं श्रुतं येन, नमस्कृतं शुद्ध भावना ।
संसारे भयभीतस्य, त्यक्तते ज्ञान दृष्टितं ।।९६।।

भावार्थ – जिस ज्ञान दृष्टि के धारक ने शुद्ध भावना से देव, गुरु, शास्त्र को नमस्कार किया है और वह इस ससार से भयवान है, सो इस ससार से छूट जाता है।

३३. जिन उक्त वयन शुद्धं च, ज्ञानेन ज्ञान लंकृतं ।
संसार शरणि मुक्तस्य, मुक्ति पथं स्वयं ध्रुवं ।।१७।

भावार्थ — जिनेन्द्र का कहा हुआ निर्दोष वचन है जो संसार के मार्ग से छुडाने वाला मोक्ष मार्ग बताता है । जिसमे ज्ञान से ही ज्ञान की शोभा है और जो निश्चय स्वरूप आप ही है ।

(ज्ञान समुच्चयसार से)

३४. जहं पज्जायं दिठ्ठं, अप्पा समयं च मुक्त ज्ञान च ।
पज्जायं परू पिच्छदि, संसारे सरनि दुक्ख वीयंमि ॥८८॥

भावार्थ – जहां कर्म जनित शरीरादि पर्याय पर मोह की दृष्टि रहती है । आत्मा चारित्र्य व ज्ञान को छोड़ बैठता है जो कोई पर पर्याय पर दृष्टि रखता है वह संसार मे दुःख का बीज बोता है ।

३५. विज्ञान ज्ञान रहियं, राग सहावेन पर्याय पर दिट्ठं ।
ज्ञान सहावं विरय, जन रंजन राग नरय वासम्मि ॥९७॥

भावार्थ – जिसको भेद विज्ञान नही है वह रागमयी स्वभाव मे पर पर्याय में ही रत रहता है वह ज्ञान स्वभाव से विरक्त है । उसमे जनो (मनुष्यो) को प्रसन्न करने वाला राग भाव रहता है जिसका फल नरकवास है ।

(उपदेश शुद्धसार से)

३६ आयोषां जिन उक्तं वर्ष पष्टानि निश्चये ।
भव्याना हृदयं चिंते त्रिभगी दलमाश्रितं ॥३॥

३७. तस्यास्ति त्रिविधं हृत्वा दशा त्रितिय उच्यते ।
मुहूर्त जिनं उक्त तस्यास्ति समय त्रियं ॥४॥

भावार्थ.– जिनेन्द्र ने आयुकर्म का जो काल कहा है यदि किसी की आयु ६० वर्ष की निश्चय की जावे तो भव्य जीव इसके सम्बन्ध में मनमें विचार करें इसके तीन भाग करे । उसको ३ मे भाग देवे जब तीसरा भाग रह जावेगा उस समय १ अन मुहूर्त आयुबंध का समय जिनेन्द्र ने कहा है इनके भी ३ भाग करते रहने चाहिये ।

उदाहरण – ६० वर्ष की आयु का

१ समय – २० वर्ष शेष रहने पर
२ समय – ६ वर्ष ८ मास शेष रहने पर
३ समय – २ वर्ष २ मास २० दिन रहने पर

४ समय – ८ मास २६ दिन १६ घंटे पर

५ समय – २ मास २८ दिन २१ घंटे २० मिनट पर

६ समय – २९ दिन १५ घंटे ६ मिनट ४० सेकेंड रहने पर

७ समय – ९ दिन २१ घंटे २ मिनट १३ १/३ सेकेंड शेष रहनेपर

८ समय – ३ दिन ७ घंटे ० मिनट ४४ ४/९ सेकेंड शेष रहने पर

यदि आठों त्रिभागी मे आयु कर्म बंध न करे तो मरण से पहले अंतर्मुहूर्त मे अवश्य बंध कर लेवे। एक त्रिभागी मे आयु बंध हो जाने पर आठो के त्रिभागो मे आयु वही रहेगी स्थिति कम या अधिक हो.जायेगी। भोगभूमिया ९ मास पहले व देव और नारकी ६ मास पहले आठ त्रिभागी से आयुबंध करते है।

३८ आलापं पर पछं कृत्वा विनास दृष्टो रतो सदा।
शुद्ध दृष्टि नहृदय चित्ते त्रिभगी थावरं पत ॥२५॥

भावार्थ – बकवाद करके, कपट करके या कपट और बकवाद दोनों करके मिथ्या दृष्टि सदा दूसरे के व अपने विनाश के विचार में लगा रहता है अपने मनमे कभी शुद्ध सम्यग्दर्शन का विचार नही करता है। इन तीन भावो मे स्थावर योनि का पात्र हो जाता है।

(त्रिभंगी सार से)

३: भोग-स्वरूप

संसार असार है। शरीर अशुचि है वैसे ही भोग भी अतृप्त-कारी है। आधार तृष्णा के बढ़ाने वाले हैं – जैसे जल रहित वन में, चमकती धूप में जल की भावना होती है; पर जल प्राप्त नही होता वैसी हालत हमारी संसार में है। हम सुख चाहते है और निराकुलता चाहते है, भ्रम यह हो रहा है कि इन्द्रियों के भोग करने से सुख मिलेगा, इसलिए यह प्राणी स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व श्रवणेन्द्रियो के साधनो को यथावत् मिलने की परेशानी उठाता है, पर फिर भी शान्ति व सुख प्राप्त नही होता है।

यदि पाचो इन्द्रियो के भोगो को या किसी एक इन्द्रिय के भोग को ही भोगने को कहा जाय तो इतनी सामर्थ्य नही। जो हर समय उन्ही में रमे तो शक्ति-हीन है और उसमें भी तृप्त नही तथा इच्छानुसार पदार्थ न पाकर बहुत क्लेश मानता है। जैसे-जैसे इच्छा-नुसार भोग्य सामग्री प्राप्त होती है वैसे वैसे तृष्णा बढ़ती जाती है। अपना शरीर दिन पर दिन जर्जर होता जाता है, इन्द्रिय शक्ति घट जाती है, भोगतृष्णा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती है। वृद्धो से पूछा जाय, आपने जन्मभर भोग भोगे अब तो तृष्णा शान्त हुई, तो वे कहते हैं कि मैं ही जर्जर हो गया पर तृष्णा शान्त नही। कहा है कि 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा', यह जीव चारो गतियो में भ्रमण करते कभी एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, पशु, मनुष्य, देव, नारकी के जन्म धारण करे, परन्तु नरक सिवाय देव, मनुष्य, तिर्यंचो के भवो मे इन्द्रियजनित भोग भी भोगे, पर तृप्ति एक इन्द्रिय की भी नही हुई। इन भोग पदार्थों का भी वियोग होता है, तब बड़ा कष्ट होता है। अपने अनुकूल पिता-माता, स्त्री-पुत्र, धन-धान्य, दासी-दास, चौपदादि के वियोग में क्लेश पाता है। हिंसा कर झूठ बोलकर, चोरी कर धन सचय करता है। सप्त व्यसनो का शिकार बन जाता है, स्व स्त्री में सतोष न कर वेश्या व परस्त्री से ममत्व करता है। भोगतृष्णा से घोर से घोर पापकर्म कर लेता है और राज विरुद्ध काम कर दण्ड भी पाता है। ऐसे घोर पापो से कुगति में जाता है और मनुष्य से एकेन्द्रिय तक हो जाता है।

देखा गया है कि समस्त संसार के प्राणी भोगों की लोलुपता में रात दिन आकुल-व्याकुल रहते हैं। चींटी अनाज एकत्र करें, मक्खी मधु संग्रह करे, दीपक में पतंगे जलें, भ्रमर कमल में बन्द हों, मछली तड़फ तड़फ प्राण दें, हस्ती काम के पराधीन होवें, ये सब इन्द्रियों के दास बने हैं।

इन्द्रिय सुख सच्चा सुख नहीं है। माना हुआ जो पराधीन है यदि पुण्य कर्म की मदद होगी तो मिलेगा, वरना उससे वंचित रहना पड़ेगा। एक इन्द्रिय के विषय एक ही बार भोग सकेगा। एक को छोडेगा तब दूसरे को भोग सकेगा, पर तृप्ति नहीं पा सकेगा। जब मर्यादा से बाहर भोग भोगते है तब रोगी होते है और सब विषय छूट जाते हैं। इन भोगो से चक्रवर्ती सम्राट भी तृप्त नही होते जिनके सब सामग्री पुण्य योग से पूर्ण रूप से प्राप्त देखी जाती है।

इन संसारी जीवो को सच्चे सुख का पता नही है अगर मालूम होता तो उसकी खोज कर इन विकारी भावो को त्याग देता। सच्चा सुख आत्मा मे है और जिसको अपनी आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है वही सच्चे सुख को पहचान लेता है।

जब यह बात है तो शरीर को किस काम मे लगाया जाय? ज्ञानी को यह पूर्ण विश्वास कर लेना चाहिए कि इन्द्रिय सुख सच्चा सुख नही है। सुखाभास है, सुख सा झलकता है। शरीर धर्म का साधन है। इसकी रक्षा के लिए न्याय बुद्धि से पुरुषार्थ कर धर्म साधनो को प्राप्त करने को इन्द्रिय से काम लेना चाहिए।

स्पर्शेन्द्रिय से पदार्थों को स्पर्श कर गुण-दोष मालूम करना, यह पदार्थ ठंडा गरम, नरम, कठोर आदि है। रसना इन्द्रिय से उन्हीं पदार्थों को भोगना जो स्वास्थ्य भोग्य हो व शरीर सबल बने वो कर्त्तव्य कर्म पालन कर सके, सद्वचनो का उपयोग, दुरवचनो का त्याग भक्ष्य का ग्रहण, अभक्ष्य का त्याग करना है। घ्राण(नाक) का उपयोग सुगन्ध-दुर्गन्ध का जानना। चक्षु के द्वारा धार्मिक साधनो को देखना लौकिक उन्नति के शास्त्रो का पठन, ज्ञान की वृद्धि करना है। कान से वार्तालाप सुनना व उपदेश सुनना है। इनसे योग्य कार्य लिया जावे।

ज्ञानी बुद्धिमान वही है जो इन्द्रियों का सच्चा उपयोग कर इस जीवन में लौकिक व पारलौकिक उन्नतिकर भविष्य में मिष्ट फल चाखे न कि इन्द्रिय के दास बन इन्द्रायण के फल का भोक्ता बने। पाप के फल के प्रत्यक्ष उदाहरण ग्रन्थों में हैं चक्रवर्ती मर ७ वे नरक जाता है, धनी मर कर सर्प होता है, श्वान होता, वृक्ष तक होता है, फिर मनुष्य होना कठिन ही नही, वरन बहुत कठिन होता है।

जो इन्द्रियो के दासत्व में अन्धे होते है वो धर्म, अर्थ और काम तीनो पुरुषार्थ को नहीं पा सकते और चाह की दाह में जल कर रोगी बनते और आत्मकल्याण से भी वञ्चित हो जाते हैं जैसे अमृत के घड़े से पग धोवे, चन्दन को ईन्धन समझ जलावे, आम खानेको बबूल लगावे, हाथी पाकर पत्थर ढोवे, राजपुत्र होकर नीच की सेवा करे।

पाचों इन्द्रिय व मन को इस प्रकार रखे जैसे मालिक घोड़ो को अपने वश रखता है जहा चाहे वहा ले जाता है और लगाम हाथ मे रखता है। अगर घोडे के वशीभूत रहे तो एक न एक समय गिरना पड़ेगा। कहा भी है –

मन के चक्कर मे है जबतक, आपने हटती नही।
कर्माधीन आत्मा की, बेंड़िया कटती नही॥
निज सुखानन्द का जब तो घट में प्रकाश हो।
काम, क्रोध, लोभ, मोह, इन चारका जब नाश हो॥

इन भोगो को जैनाचार्यो ने कैसा बताया है –

१. वर भवण जाण वाहण सयणासण देवमणुवरायाणं
मादुपिदु सजणभिच्च संबंधिणो य पिदिवियाणिच्चा ॥३॥

भावार्थ.– बडे बडे महल, सवारी, पालकी, शैय्या, आसन जो इन्द्र व चक्रवर्तियो के होते है तथा माता, पिता, चाचा, सज्जन, सेवक आदि के सब सम्बन्ध अस्थिर है।

२. सामग्गिंदियरूवं आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्णं सुरधनुमिव सस्सयं ण हवे ॥४॥

भावार्थ – सर्व इन्द्रियो का रूप, आरोग्य, युवानी, बल, तेज, सौभाग्य, सुन्दरता ये सब इन्द्र धनुष के समान चचल है।

(द्वा० अनुप्रेक्षा)

३ आदेहि कम्मगंठे जा बद्धा विसय राग रागेहिं ।
तं छिदंति कयत्था तव संजम शील य गुणेण ॥२७॥

भावार्थ - इस आत्मा ने जो कर्मों की गांठ इन्द्रिय भोगों में राग करने से बांधी है, उसको कृतार्थ पुरुष, तप, संयम, शीलादि गुणों से नाश छेद डालते है ।

(कुंद कुंद शील पाहुड)

४. घिदभरिदघडसरित्थो पुरिसो इत्थी बलंत अग्गिसमा ।
तो महिलेयं दुक्का णट्ठा पुरिसा सिवं गया इयरे ॥१००॥

भावार्थ – पुरुष घी से भरे हुए घट के समान है, स्त्री जलती हुई आग के समान है । इस कारण बहुत से पुरुष, स्त्री के संयोग से नष्ट हो चुके । जो बचे वे ही मोक्ष पहुंचे है ।

(वट्टकेर – मूलाचार)

५. कर्म परवशे सान्ते दु खैरन्तरितोदये ।
पाप बीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥१२॥

भावार्थ – यह इन्द्रिय सुख पुण्य कर्म के आधीन है, अन्त होने वाला है । दु खो के साथ इसका लाभ होता है व पाप बांधने का कारण है, ऐसे सुख मे श्रद्धा न रखना निष्कांक्षित अग कहा गया है ।

(स्वामी समंतभद्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

६. देविंद चक्कवट्ठी, य वासुदेवा य भोग भूमीया ।
भोगेहिं ण तिप्पंति हु तिप्पदि भोगेसु किह अण्णो ॥१२६६॥

भावार्थ.– इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, भोग भूमिया जब भोगो से तृप्त ही नही हो सकते हैं तो और कौन भोगो को भोग कर तृप्ति पा सकेगा ।

७. अप्पायत्ता अज्झ प्परदी भोग रमणं परायत्तं ।
भोग रदीए चइदो, होदि ण अज्झप्परमणेण ॥१२७०॥

भावार्थ.– अध्यात्म मे रति स्वाधीन है, भोगो में रति पराधीन है, भोगो से तो छूटना ही पड़ता है, अध्यात्म रति में स्थिर रह सकता है । भोगो के भोग मे अनेक विघ्न आते है, आत्म रति विघ्न रहित है ।

(श्री शिवकोटि आचार्य – भगवती आराधना)

८. न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत् क्षेमंकरमात्मनः ।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥५५॥

भावार्थ – इन इन्द्रियों के भोगों में लिप्त हो जाने से कोई भी ऐसी बात नहीं हो सकती जिसमें आत्मा का कल्याण हो । तो भी अज्ञानी अज्ञान के भाव से उन्हीं में रम जाया करता है ।

(श्री पूज्यपाद स्वामी – समाधि शतक)

९. व्यावृत्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुचिरं ।
दुर्वार हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटम् ॥
ध्यानं ध्यायति मुक्तये भवततेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो ।
नोपायेन विना कृता हि विषय सिद्धि लभंते ध्रुवं ।५४॥

भावार्थ:– जो कोई कठिनता से वश करने योग इस मन रूपी बन्दर को जो इन्द्रियों के भयानक वन में लोभी होकर चिरकाल से चर रहा था, हृदय में स्थिर करके बाँध देते है और भोगों की वाञ्छा छोडकर परिश्रम के साथ ध्यान करते हैं वे ही मुक्ति को पा सकते हैं । बिना उपाय के निश्चय से सिद्धि नहीं होती है ।

१०. चक्री चक्रमपाकरोति तपसे यत्तन्न चित्रं सताम् ।
सूरीणां यदनश्वरीमनुपमां दत्ते तप सपदम् ॥
तच्चित्रं परमं यदत्र विषयं गृह्णाति हित्वा तपो ।
दत्तेऽसौ यदनेकदु खमवरे भीमे भवाम्भोनिधौ ॥९७॥

भावार्थ'– यदि चक्रवर्ती तप के लिए चक्र को त्याग देता है तो इससे सज्जनों को कोई आश्चर्य नहीं भासता है । यदि तपस्वियों को यह तप अनुपम अविनाशी संपदा को देता है तो इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं । बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि जो तप को छोड़ कर विषय भोगों ग्रहण करता है । वह इस महान भयानक संसार-समुद्र में अपने को अनेक दु:खों के मध्य में पटक देता है ।

(श्री अमित गति आचार्य – तत्वभावना)

११. नरकस्यैव सोपानं पाथेयं वा तदध्वनि ।
अपवर्ग पुर द्वारकपाट युगलं दृढम् ॥१४॥

१२. विघ्नबीज विपन्मूलमन्यापेक्ष [illegible] ।
करण ग्राह्यमेतद्धि यदक्षार्थोत्थित [illegible] ॥१५॥

भावार्थ – यह इन्द्रियों से उत्पन्न [illegible] नरक के [illegible] सीढी है या नरक के मार्ग में जाने [illegible] मार्ग [illegible] है। मोक्ष [illegible] का द्वार बन्द करने को मजबूत [illegible] है, [illegible] है, विपत्तियों का मूल है, पराधीन है, भय का स्थान है तथा इन्द्रियों से ही ग्रहण करने योग्य है।

१३. मीना मृत्यु प्रयाता रसनवशमिता दन्तिन. स्पर्शरुद्धाः ।
वद्धास्ते वारिवन्धे ज्वलनमुपगताः पत्रिणश्चाक्षिदोषात् ॥
भृगा गन्धोद्धताशाः प्रलयमुपगताः गीतलोला. कुरगा ।
काल व्यालेन दष्टास्तदपि तनुभृता मन्द्रियार्थेषु रागः ॥३५॥

भावार्थ – रसना इन्द्रिय के वश होकर मछलिया मरण को प्राप्त होती है, हाथी स्पर्श इन्द्रिय के वश होकर गढे म गिराये जाते है व वाधे जाते है, पतगे नेत्र इन्द्रिय के वश होकर आग की ज्वाला में जल कर मरते है; भ्रमर गन्ध के लोलुपी होकर कमल के भीतर मर जाते है, मृग गीत के लोभी होकर प्राण गवाते है। ऐसे एक एक इन्द्रिय के वश प्राणी मरते है तो भी देह धारियो का राग इन्द्रिय के विषयो में बना ही रहता है।

१४. यथा यथा हृषीकाणिस्ववश यांति देहिनाम् ।
तथा तथा स्फुरत्युच्चैर्हृदि विज्ञान भास्कर: ॥११॥

भावार्थ – जैसे जैसे प्राणियो के वश मे इन्द्रिया आती जाती है वैसे वैसे आत्म ज्ञान रूपी सूर्य हृदय मे ऊचा ऊचा प्रकाश करता जाता है।

(श्री शुभचन्द्र आचार्य – ज्ञानार्णव)

१५. कल्पेशनागेश नरेशसंभव चित्ते सुख में सतत तृणायते ।
कुस्त्रीरमास्थानक देह देह जान् सवेति चित्रं मनुतेऽल्पधीः सुखं ॥१०-९॥

भावार्थ – मैने शुद्ध चिद्रूप के सुख को जान लिया हे इसलिए मेरे चित्त में देवेन्द्र, नागेन्द्र और इन्द्रो के सुख जीर्ण तृण के समान दीखते है, परन्तु जो अज्ञानी है वह स्त्री, लक्ष्मी, घर, शरीर और पुत्रादि के द्वारा होने वाले क्षणिक सुख को, जो वास्तव मे दुख रूप है, सुख मान लेता है।

(श्री ज्ञानभूषण भट्टारक – तत्वज्ञानतरंगिणी)

१६. सफरस काम चाहे रसना हू रस चाहे,
नासिका सुवास चाहे नैन चाहे रूप को
श्रवण शब्द चाहे काया तो प्रमाद चाहे,
वचन कथन चाहे मन दौर धूप को ॥
क्रोध क्रोध कर्यो चाहे मान मान गह्यो चाहे,
माया तो कपट चाहे लोभ लोभ कूप को ।
परिवार धन चाहे आशा विषय सुख चाहे,
एतै बैरी चाहे नाहीं सुख जीव भूप को ॥४६॥
(प० द्यानतरायजी—द्यानत विलास)

१७ मौन के धरैया गृह त्याग के करैया विधि,
रीति के सधैया पर निंदा सों अपूठे हैं ।
विद्या के अभ्यासी गिरिकन्दरा के वासी शुचि,
अंग के अचारी हितकारी बैन छूटे हैं ॥
आगम के पाठी मन लाये महा काठी भारी,
कष्ट के सहन हार रामाहूं सों रूठे हैं ।
इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते,
इन्द्रियन के जीते बिना सब अंग झूठे हैं ॥
(प० बनारसीदास—बनारसी विलास)

१८. देखन हो कहां कहां केलि करे चिदानन्द,
आतम सुभाव भूलि और रस राच्यो है ।
इन्द्रियन के सुख में मगन रहे आठों जाम,
इन्द्रिन के दुख देखि जाने दुख सांचो है ॥
कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ,
अहं भाव मानि मानि ठौर ठौर माच्यो है ॥
देव तिरजंच नर नारकी गतीन फिरे.
कौन कौन स्वांग धरे यह ब्रह्म नाच्यो है ॥३९ ।
(भैया भगवतीदास—ब्रह्म विलास)

इसी विषय में तारण स्वामी तथा कहते हैं —

१९. दंसन दिट्ठि सदिट्ठं, कम्ममल धोस मिच्छ संगलियं ।
गलियं कुन्नान भावं, जं तिमिरं दिनकरं तेजं ॥२५४॥

भावार्थ – सम्यग्दर्शन उसे जानना चाहिए जहां मिथ्या [illegible] । जहां [illegible] दोष का अभाव हो गया हो और जहां मिथ्याज्ञान । [illegible] का [illegible] रहा हो जैसे – सूर्य के तेज प्रकाश के सामने अन्धकार नही रहता है।

२०. दंसन दिद्ठि स दिट्ठं, विहडं कम्मान मिच्छ सुह असुहं ।
विहडै मान कषायं, जंमोहं दिद्ठि गयदं जूहेन ॥२५५॥

भावार्थ:-सम्यग्दर्शन का प्रकाश उसे कहते हैं जहा मिथ्यात्व सहित शुभ व अशुभ कार्य बन्द हो जाते है । जहा शरीर धनादि का मद भाव भी नही रहता , जैसे – सिंह को देखकर हाथी के समूह भाग जाते हैं।

२१. पंच इन्द्री संवरनं, रागं दोषं च विषय संवरनं ।
मन नरपति संवरनं, थावर रक्षा च संयम शुद्धं ॥५७५ ।

भावार्थ – पाचो इन्द्रियो को रोकना, राग-द्वेष व विषय वासना को रोकना, मनरूपी इन्द्रियो के राजा को रोकना, स्थावर त्रस जीवो की रक्षा करना शुद्ध सयम है ।

(ज्ञान समुच्चय सार)

२२. कल रजन दोष उवन्नं, कल सहकारं च वृद्धि सजुत्तं ।
परिनइ कलुषं सहायं, कललंकृत कमं तिविह उववन्नं ॥१२३॥

भावार्थ – कल नाम शरीर । शरीर मे रजायमान होने से दोषो की उत्पत्ति होती है । शरीर की सहायता से दोष वढते जाते है । कलुष स्वभाव मे परिणति होती जाती है । शरीर के साथ राग होने से तीन प्रकार से कर्मो की उत्पत्ति होती है ।

२३. इन्द्री सुभाव दिट्ठं, अनिष्ट संजोय शरणि संसारे ।
जिन वयनं पिच्छन्तो, अतिंद्री भाव इन्द्रि विरयंति ॥२५१॥

भावार्थ – शरीराश्रित इन्द्रियो का स्वभाव ऐसा देखा गया है कि वे आत्मा को अहितकारी विषय भोगो का सम्भोग मिलाती है और उनमें तन्मय कराकर प्राणी को ससार मे भ्रमण कराती है । जो सम्यग्दृष्टी जिन वाणी पर विश्वास लाता है, वह आत्मा के अतीन्द्रिय सुख पर निश्चय रखता हुआ इन्द्रिय के सुखो से विरक्त रहता है ।

(उपदेश शुद्ध सार)

२४. सुदेवं न उपासंते, क्रियते लोक मूढय ।
कुदेवे याहि भक्तिश्च, विश्वासं नरयं पतं ।.५९।।

भावार्थ – जो सच्चे देव श्री वीतराग सर्वज्ञ भगवान को नही पूजते है व लोक मूढता करते है । रागी द्वेषी देवो मे जो कुछ भी उनकी भक्ति है या विश्वास है, नरक में डालने वाला है ।

२५. अदेवं देव उक्तं च, अंध अंधेन दृष्यते ।
मार्गं कि प्रवेश च, अंध कूपे पतति ये ।६०।।

भावार्थः– जिनमे देवपना विल्कुल नही है ऐसो को देव कहा जाता है उनको देव मानता ऐसा है जैसे - अन्धे को अन्धे द्वारा मार्ग - दिखाया जावे, किस तरह मार्ग मे प्रवेश हो सकेगा ? ये देव तो अन्धे कूप मे डाल देते हैं ।

२६. यावत् शुद्ध गुरुं मान्यो, तावत् विगत विभ्रमः ।
शल्यं निकदनं येन, तस्मै श्री गुरुभ्यो नमः ।।७४।।

भावार्थः– जब तक शुद्ध आत्मा के अनुभवी चरित्र मे शुद्ध ऐसे गुरु की मान्यता रहेगी, भक्ति, पूजा व प्रतिष्ठा, सगति की जायेगी तब तक कोई मिथ्याभाव नहीं रहेगा । जिस गुरु ने माया, मिथ्या निदान तीन शल्यो को नष्ट कर दिया है । उस श्री गुरु को नमस्कार हो ।

२७. इन्द्रियाणां मनो नाथः, प्रसरतं प्रवर्तते ।
विषयं विषम विष्टं च, तन्मत मिथ्याभूतय ।।७९।।

भावार्थ – मन पांचो इन्द्रियों का नाथ है । जितना इसे फैलाया जाय यह वर्तता है या दौडता है भयानक व कठिन विषयो को देखा करता है इस मन को मिथ्या भूत या मिथ्या काम करने वाला कहा गया है ।

२८. कुगुरुं ग्रंथ संयुक्तं, कुधर्म प्रोक्तं सदा ।
असत्यं सहितं हि सः, उत्साहं तस्य कोपने ।।९१।।

२९ तत् धर्म कुमति मिथ्यातयं, अज्ञान राग बंधनं ।
आराध्यं येन केनापि, संसारे दुःख कारणं ।।९२।।

भावार्थ – परिग्रह धारी कुगुरु ने सदा कुधर्म को कहा है । यह कुधर्म निश्चय करके असत्य से मिला हुआ है इसमे अनन्त का उत्साह या

प्रेरणा किया गया है। ... ... मिथ्या दर्शन है। राग ... ... कुधर्म का आराधन किया ... ...

(...)

३०. शंकादि दोषं मद मान मुक्तं, मूढं त्रयं मिथ्या माया न दृष्टं।
अज्ञान षट् कर्म मल पंच षोमं, त्यागन्त ज्ञानी मल कर्म मुक्तं ॥१८॥

भावार्थ – जहा शंकादि आठ दोष, आठ मद, जो मिथ्यादि तीन मूढ़ता व छः अनायतन नही है ऐसे ... दोष से रहित ज्ञानी कर्मो से छूटता है।

३१ किं रत्न कार्यं बहुवे अनतं, किं अर्थं अर्थं नहि कोपि कार्यं।
किं राज चक्रं किं ... , किं तत्व वेत्ति विन शुद्ध दृष्टी ॥२२॥

भावार्थ – यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त नही हुआ तो रत्न–स्वर्णादिक चक्रवर्ती की सम्पदा भी तत्वज्ञान में सहायक नही हो सकती, इसमें ! श्रेणिक ! आत्म तत्व की शरण लो तब ही भला होगा।

(जिनारमत–मालापाठ से)

३२. प्रक्षालितं त्रति मिथ्यातं, शल्यं त्रयं निकदनं।
कुज्ञानं राग दोषं च, प्रक्षालितं असुद्ध भावना ॥१३॥

भावार्थ – इस सम्यक्त ज्ञान रूपी जल से तीन प्रकार का दर्शन मोह धुल जाता है। माया, मिथ्या, निदान तीन शल्य निकल जाते हैं। कुज्ञान व राग-द्वेष तथा अशुभ भावनायें सब धुल जाती है।

३३. कषायं चत्रु अनंतानं, पुण्य पाप प्रक्षालितं।
प्रक्षालित कर्म दुष्टं च, ज्ञानं स्नानं पंडिताः ॥ १४॥

भावार्थ – अनन्त अनुभव-शक्ति को रखनेवाले के क्रोधादि कषाय तथा पुण्य-पाप सब धुल जाते हैं। दुष्ट कर्म भी धुल जाते है ऐसा पंडितों का मत है।

३४. सार्द्धं च सप्त तत्वानं, द्रव्यकाया पदर्थकं।
चेतना शुद्ध ध्रुवं निश्चय, उवतंति केवलं जिनं ॥२०॥

भावार्थ.- सात तत्व, छ द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ इनमे एक अविनाशी शुद्ध चेतना ही निश्चय समार वस्तु है । जो केवली है जिनने कही है ।

(विचार मत – पूजापाठ)

३५ दर्शन मोहान्ध विमुक्तं, राग द्वेषं च विषय गलियं च ।
ममल स्वभाव उवन्नं, नंत चतुष्टय दृष्टि संदर्श ॥९॥

भावार्थ'- जो कि आत्मा के सम्यग्दर्शन को घात करने वाले दर्शन, मोहनीय कर्म से छूट करके राग द्वेष और मोहादिक विषयों को नाश करते हैं जिनने आत्मा के अनन्त चतुष्टय के बल से संसार मे देखने योग्य पदार्थों को देखा है ऐसे देव को नमस्कार है ।

३६. अवंभ भाव च षयकं, विकहा विसनस्य विषय मुक्तं च ।
ज्ञान सहाय सु समयं, समयं सहकार विमल अन्मोय ॥१५॥

भावार्थ – जिन्होंने आत्मिक ज्ञान के बल से अब्रह्म पने के भाव को नष्ट किया है तथा चार विकथा, वो पाच इन्द्रियों के सत्ताईस विषयों से रहित है जो ज्ञान की सहायता से आत्मा मे तन्मय हो रहे हैं एव जो कर्म मल रहित अमूल्य अवस्था को प्राप्त हुए हैं ऐसे देव को नमस्कार है ।

(विचार मत – कमल बत्तीसी)

३७. धर्म जो धरियो जिनवर ओनो, ज्ञान विज्ञान सुभाओ ।
जहं जहं कम्म उपत्त सदिट्ठी, तहं तहं खिपन सहाओ ॥१०॥

भावार्थ – श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित भेद विज्ञान द्वारा प्राप्त स्व अनुभव स्वभाव रूप धर्म को जिसने धारण किया है उस सम्यग्दृष्टी के जैसे जैसे नवीन कर्मों का बंध होता है वैसे वैसे वह बन्ध अवश्य ही क्षय होने वाला है । सम्यग्दृष्टी के कर्म का भार जड़ रहित वृक्ष के समान है, शीघ्र ही पुराने बन्ध के साथ नवीन बंध भी नष्ट हो जावेगा ।

(आचार मत – ममल पाहुड़)

३८. बंभ चरन आचरन अगह गई, षट् रमन रमन सुई जिनय जिनं ।
अवंभ रमन सुइ विलय सहज जिनु, अन्मोय ग्यान सुइ, बंभ पयं ॥
उवमन रिम रमन सु ममल पयं ॥१२॥

( )

भावार्थ – श्री [illegible] है। [illegible]
निर्मल [illegible] है, [illegible]
करते हुए अनन्त दर्शनादि [illegible] है, वे ही [illegible]
है, वे ही वीतराग जिन हैं। [illegible]
या परमात्मा का [illegible] [illegible]
आनन्दमयी ज्ञान का होना [illegible] [illegible] और [illegible]
भाव में रमण करते हुए श्री [illegible] धारी हैं।

([illegible] १० [illegible])

३९. माया अनृत रागं मिथ्यात मय रागं युतं ।
असत्यं निदान बन्ध त्रिभगी नरय पत ।।१८।।

भावार्थ.- मिथ्या क्रिया में राग भाव मायाचार है, मिथ्यात्व सहित क्रिया का भाव, मिथ्या है। असत्य पदार्थ की तृष्णा निदान है। ये तीनों भाव नरक के ले जाने के कारण है।

४०. स्त्रियांकाम वर्धन्ते पुंमं मिथ्यात मय संजुतं ।
नपुंसक मति पडस्य त्रिभगी दल तिष्टते ।।३४।।

भावार्थ – मिथ्यात के साथ मिथ्यादृष्टि जीव में स्त्री सम्बन्धी भाव के होने पर काम भाव की वृद्धि होती है। उसी तरह पुरुष वेद के उदय से नपुंसक सम्बन्धी भाव उभय रूप होता है ये तीनो कामभाव आश्रव के कारण कारण है।

४१. मनुष्यनी व्रत हीनस्य त्रियंचनी असुह भावना ।
देवागना मिच्छतृष्टीच त्रिभगी पतितं दल ।।३५।।

भारर्थ.– जिसको ब्रम्हचर्य का कोई एक देश व सर्व देशव्रत नही है। वह स्त्री के सम्बन्ध में काम विकार करता है काम भाव की अशुभ भावना से कभी किसी पशुको देख कामविकार कर लेता है या पशुओं की काम क्रीड़ा देख आनन्द मानता है। मिथ्या दृष्टि विषय सुख का रागी पुण्य के फलसे देवागना का भोगचाहा करता है ये तीनो प्रकार की चेतन स्त्रिया दुर्गति में ले जाने की पात्र है।

(त्रिभगी सार से)

४२. मुंच मुंच विषयाऽमिष भोगं । लुंप लुंप निज तृष्णा रोगं ।
रुध रुध मानस मातंगं । धर धर जीव विमल तर योग ॥६९॥

भावार्थ :- हे भाई तू अपने भीतर से तृष्णा रूपी रोग को निकालकर फंक दे विषय रूपी मास का भोग छोड़ दे मन हस्ती को रोक कर निर्मल आत्मध्यान का अभ्यासकर माया मिथ्या निदान तीन महान दोषो को दूर कर के निर्मल भावो मे आत्महित करने योग्य है।

(श्री चन्द्र कृत – मणिमाला में)

४. सुख-स्वरुप

ससार असार है, शरीर विनाशिक है, भोग ... है ... तृष्णाओ को बढानेवाले है । जैसे - पानी में चन्द्रमा का प्रतिबि... देख चन्द्रमा मान लेना । सिंह को पानी मे अपनी परछाई देख ... मान लेना । दर्पण मे अपना प्रतिबिम्ब ... मुर्ग देख अपने को ... मान लेना । मद्यपायी धतूरे को कनक माने ऐसा इन्द्रिय-जनित ... को सुख मान रहा है ।

सच्चा सुख स्वाधीनता, निराकुलता, सरलता, समता ... अपना ही स्वभाव है । ईख मीठी, नीम कडुआ, इमली खट्टी, ... ठण्डा, अग्नि गरम, चादी श्वेत, सोना पीला आदि है । जैसे - ... की डली स्वादने पर खारेपन का बोध कराती और मिश्री की मीठेपन को दर्शाती है, वैसेही आत्मा सुख का ज्ञान कराता है । सुख की पूर्ण प्रगटता से ही परमात्मापन प्रगट हो जाता है. ... अनन्त सुखी है ।

आदि मान शरीर के मोह में पागल हो जाता है। कभी बालक, युवा, वृद्ध आदि नहीं, मैं आत्मा शुद्ध स्वरूप में शरीर से अलग हूं, ऐसा कभी नहीं सोचता। जैसे – तुष से चावल, भूमी से तेल, जल में कमल अलिप्त है। अपने मूल स्वभाव को न जानता हुआ विषयों की तृष्णा में रात दिन फँसा रहता है।

कस्तूरी मृग को नाभि में होते हुए वन वन भटकता है और सुगन्ध को ढूढता है। मदिरा पीने वाला घर में रहके घर भूल जाये और बाहर ढूढे, इसी तरह यह प्राणी सुखको अपने पास रहते, इन्द्रिय सुखों में ढूढता फिरे तो कहा मिलेगा ?

जब सुख आत्मा का गुण है तब उसका परणमन–स्वभाव और विभाव दो रूप होता है। सहज सुख का विश्वास साधारण मनुष्यों को कराने के लिए कहते हैं कि उस समय में इन्द्रिय–सुख के सिवाय ऐसा सुख है जो मन्दकषाय होने पर शुभ कार्य करते हुए विचारवान मनुष्यों के भोगने में आता है।

(१) परमात्मा के शुद्ध गुणों की भक्ति। (२) धर्मशास्त्रों को ध्यान से पढना व सुनना। (३) रोगीकी सेवा टहल। (४) भूखे को भोजन। (५) दुखियों का दुःख निवारण। (६) समाज के उपकारार्थ उद्यम। (७) गरीबों की सेवा। (८) परोपकारार्थ दान। (९) डूबते को बचाना। (१०) स्वयंसेवक बन सेवा करना। (११) कोमल और दया-भाव से मन्दकषाय होकर किसी स्वार्थ के बिना लोभ व प्रतिष्ठा से रहित हो मन, वचन, कायका वर्तन, अपनी शक्तियों की वनो परोपकारार्थ की जावे, उस समय जो स्वाद आता है वह इन्द्रिय सुख नहीं है, आत्मीक सुख है। यह तो स्वयंसिद्ध है।

दानी, परोपकारी, स्वार्थत्यागी जब निष्काम–कार्य करते हैं या भक्ति करते, धर्मशास्त्र पढते हैं। उस वक्त मन इन्द्रिय–सुखों का (विषयों का) कार्य बन्द रहता है। जब इन्द्रिय–सुख नहीं है और सुख अवश्य है तभी स्वभाव–विभाव, परणति जानी जाती है। यह सुख कुछ लोभ या मोह के त्याग से हुआ है। यदि सम्पूर्ण पदार्थों से मोह छोड दिया जावे तो कितना सुख प्राप्त होगा जो वचन से अगोचर है।

सच्चा सुख स्वाधीन है। हर एक को प्राप्ति है। इसी सम्पत्ति-भंडार को भूल संसार में भटकते हैं, जहां सुखों का अंश नहीं। मोह-वश, भ्रम-वश, अज्ञान-वश अपने पास अमूल्य होने का पता न पाकर दुःख भोग रहे हैं।

सहज सुख के भोग में शरीर को हानि नहीं। सुखकर प्रसन्नता, शरीर हलका, रोगों की शान्ति होती है। संसार शरीर भोगों की दशा देख इस अपवित्र शरीर कारागार से छूटना चाहो तो रत्न पहिचान जौहरी बनो। इन्द्रिय-सुख को कांच खण्ड समझ रत्न के बदले मत लो, नहीं तो ठगा जाओगे।

कुछ स्वभाव व विभावों की तालिका दी जाती है -

स्वभाव	विभाव
१. वीतराग भाव होना स्वभाव है।	१ कषायरूप होना विभाव है।
२ मन्द कषाय होना स्वभाव है।	२ तीव्र कषाय होना विभाव है।
३ आत्मा की ओर उपयोगवान होना स्वभाव है।	३. सांसारिक सुख या दुःख रूप होना विभाव है।
४. सातावेदनी का उदय, रति-कषाय का उदय स्वभाव है।	४ असातावेदनी का उदय, अरति-कषाय रूप होने का उदय. जब नमक का खारा, शक्कर का मीठा, नीम का कड़ुआ, खटाई का खट्टा, वैसे ही इलायची, बादाम, पिस्ता, किसमिस, मिश्री आदि का इन्हीं रूप है।
५. शुद्ध जल का स्वाद शुद्ध ही रहेगा।	५ ऐसे ही क्रोध मान माया रूप रागद्वेष द्वारा इन्हीं रूप दिखेगी
६ वीतराग, शांतभाव आत्माको हितकारी है।	६. रागद्वेष मिश्रित कर्म-बन्ध रूप, विभाव रूप है।
७. ज्ञानी शुद्ध जल का भोगता है।	७ अज्ञानी अशुद्ध या गधले जल का भोगता है।

८ अतिन्द्रिय सुखका भोग आत्मा के सुखगुण का स्वभाव है।	८ इन्द्रिय सुखभोग, मलिनकषाय की कलुषता का भोग है।
९ सहजसुख, निरोग, श्वेतमिष्ट शीतल, आभूषण, जीवन, आयुफल, सुगन्धित, उपवन, मिष्ट जल, कोमल स्वर, हंस अमूल्य रत्न व सुगन्ध पवन, सदृश है।	९. जबकि इन्द्रिय सुख, रोग, कृष्ण, खारा, तापमय, बेड़ी, मृत्यु, इन्द्रायन, बागरहित, जंगल, खारा पानी, गर्दभ स्वर, काल, काच खण्ड, आंधी है।
१० सहज सुख, प्रभात, राज-मार्ग।	१० इन्द्रिय सुख, रात्रि, विकट-मार्ग।
११ सहज सुख को हर आत्म-ज्ञानी, कुरूप सुरूप, बलिष्ठ निर्बल, शास्त्रज्ञाता, अपढ़, वनमें, महलमें, दिनमें रात में, सवेरे, सांझमें हरस्थान हर समय, हर अवस्था में प्राप्त कर सकता है।	११ इन्द्रियसुख का वही पा सकता है जिसको विषयभोग मिले जिनका मिलना हर एक मानवों को कठिन है। कहा है — चक्रवर्ति की सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग, काकबीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।

जैनाचार्य इसी सहज सुख के सम्बन्ध में क्या कहते हैं:-

१ सोक्खं वा पुण दुक्खं, केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ॥२०॥

भावार्थ — केवली अरहन्त के इन्द्रिय जनित ज्ञान व सुख नहीं है, किन्तु सहज अतीन्द्रिय ज्ञान है व सहज अतीन्द्रिय सुख है।

२. तं देवदेवदेवं जदिवरवसहं गुरुं तिलोयस्स।
पणमंति जे मणुस्सा, ते सोक्खं अक्खयं जंति ॥८५॥

भावार्थ.— जो मनुष्य साधुओं में श्रेष्ठ, तीन लोक के गुरु, देवों के देव श्री अरहन्त भगवान को भावसहित नमन करते हैं वे अविनाशी सहज-सुख को पाते हैं।

(कुन्दकुन्दाचार्य श्री प्रवचन सार से)

३. भावेह भाव मुद्दं [illegible] सुविसुद्धं [illegible] ।
लहु चउगइ चइऊणं जइ [illegible] सासय सुक्खं ॥६०॥

भावार्थ – जो चार गति रूप संसार से [illegible] आत्मा के [illegible] सहजसुख को चाहते हो तो [illegible] भावना करो ।

([illegible])

४. उवसमखयमिस्सं वा बोहिं लद्धूण भवियपुरिसो ।
तवसंजम संजुत्तो अक्खय सोक्खं तदा लहदि ॥७०॥

भावार्थ – जो भव्य उपशम, क्षायिक या क्षयोपशम [illegible] को प्राप्त करके तप व सयम पालेगा वह तब अक्षय सहज सुख को पावेगा ।

(श्री [illegible])

५ जन्मजरामय मरणै शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

भावार्थ – निर्वाण जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दु ख भय से रहित है । शुद्ध सहज सुख से पूर्ण है, परम कल्याण रूप है तथा नित्य है ।

(स्वामी समन्तभद्र रत्नकरंड श्रावकाचार)

६. सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथात्मनि ।
बहिरेवासुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मन ॥५२॥

भावार्थ – जो ध्यान को प्रारम्भ करना है उसकी आत्मा मे कष्ट व बाहर सुख मालूम पडता है परन्तु जिनकी भावना आत्मा मे दृढ हो गई है उसको बाहर दु ख व आत्मा मे ही सहज सुख अनुभव म आता है ।

(श्री पूज्यपाद स्वामी समाधि शतक)

७. स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखं ।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः ॥४६॥

भावार्थ – धर्म वह है जहा अधर्म नही हो, सुख वही है जहा कोई दुःख नही है, ज्ञान वही है जहा अज्ञान नही हो, वही गति हे जहा से लौटना नही हो ।

भावार्थ – जो ज्ञानी [illegible] है [illegible]
मे मुक्त है, वही अविनाशी [illegible] को पा सके[illegible]
([illegible])

१३. असिमसि कृषि [illegible] शिल्प वाणिज्य योगैः ।
स्तनु धन सुत [illegible] कर्म यादृक्करोति ।।
सकृदपि यदि तादृक् संयमा[illegible] [illegible] ।
सुखममलमनंत कि तदा नाश्नुतेऽलम् ।।६६।।

भावार्थ – हे भव्य! जैसा तू परिश्रम शरीर रक्षा, धनप्राप्ति व पु
लाभ के लिए असि, मसि, कृषि, [illegible], शिल्प, वाणिज्य इन छ प्रका
की आजीविकाओं से करता है, यदि वैसा परिश्रम एक दफे तो संय
के लिए करे तो क्यो नही निर्मल अनन्त, सहजसुख को भोग सकेगा
अर्थात अवश्य परानन्द को पावेगा ।
(श्री अमितगति आचार्य तत्वभावन

१४. धर्मएव सदा त्राता जीवाना दु ख सकटात् ।
तस्मात्कुरुत भो यत्न यत्रानन्त सुखप्रदे । ७२।।

भावार्थ.– जीवो को धर्म ही सदा दु ख सकटो मे रक्षा करनेवाला
इसलिए इस अनतसुख के दाता धर्म म प्रयत्न करना चाहिये ।

१५. इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा स्वात्मानं वशमानयेत् ।
येन निर्वाण सौख्यस्य भाजन त्व प्रपत्स्यसे ।।१३४ ।

भावार्थ - इन्द्रियो के फैलाव को रोककर अपने आपको तू वश मे कर
तव तू अवश्य निर्वाण के सहजसुख को पा सकेगा ।

१६. रोषे रोषं परं कृत्वा माने मान विधाय च ।
संगे सगं परित्यज्य स्वात्माधीन सुख कुरू । १९?।।

भावार्थ – क्रोध से भले प्रकार क्रोध करके, मान मे मानको पटक कर,
परिग्रह में परिग्रह को छोड कर स्वाधीन सहजसुख का लाभ कर ।

१७. प्रज्ञा तथा च मैत्री च समता करुणा क्षमा ।
सम्यक्त्व सहिता सेव्या सिद्धिसौख्य सुखप्रदा । २६७।

भावार्थ - सम्यग्दर्शनपूर्वक भेदविज्ञान, सर्वसे मैत्रीभाव, समता व दया इनको सदा सेवा करनी चाहिए। इन्हीं से निर्वाण का सहजसुख प्राप्त होगा।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य सारसमुच्चय)

१८. शुद्धं यदेव चैतन्यं तदेवाहं न संशयः।
कल्पनयानयाप्येतद्धीनमानन्द मन्दिरम् ॥५२॥

भावार्थ.- यह शुद्ध चैतन्य है सो ही मैं हूं, कोई संशय की बात नहीं है। वह सर्व कल्पनामय नयों से रहित है व सहज आनन्द का मन्दिर है।

(श्री पद्मनन्दी मुनि एकत्व सप्तति)

१९. नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्।
पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम् ॥३५-१८॥

भावार्थ – मैं नित्य सहजानन्दमय हूं, चैतन्यस्वरूप हूं, सनातन हूं, परम ज्योतिस्वरूप हूं, अनुपम हूं, अविनाशी हूं, ऐसे ज्ञानी अपने भीतर अपने को देखता है।

(श्री शुभचन्द्र आचार्य ज्ञानार्णव)

२०. ये याता यांति यास्यंति योगिनः शिवसंपदः।
समासाद्ध्यैव चिद्रूपं शुद्धमानंद मंदिरं। १६-२॥

भावार्थ.- जो योगी मोक्ष सम्पदा को प्राप्त हुए, होंगे व हो रहे हैं उसमें शुद्ध चिद्रूप का ध्यान ही प्रधान कारण है, यही सहजानन्द का घर है।

२१. नात्मध्यानात्परं सौख्यं नात्मध्यानात् परं तपः।
नात्मध्यानात्परो मोक्षपथः क्वापि कदाचन ॥५ ८॥

भावार्थ – आत्मध्यान के बिना और किसी उपाय से उत्तम सुख [illegible] नहीं हो सकता है। आत्मध्यान से बढ़कर और कोई तप नहीं है। आत्मध्यान से बढ़कर [illegible] किसी समय में कोई [illegible] मार्ग नहीं है।

([illegible])

२२. जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसों निज मर्म ।
तब सुखरूप विमल अविनाशिक जानै जगत शिरोमणि धर्म ॥
अनुभव करै शुद्ध चेतन को, रमै स्वभाव वमै सब कर्म ।
इहि विधि सधै मुक्ति को मारग, अरु समीप आवै शिव शर्म ।५।

(पं० बनारसीदासजी नाटक समयसार)

२३. भजत देव अरहत, हंत मिथ्यात मोहकर ।
करत सुगुरु परनाम, नाम जिन जपत सुमन धर ॥
धरम दयाजुत लषत, लषत निज रूप अमलपद ।
पञ्चभाव गहि रहत, रहत हुय दुष्ट अष्ट मद ॥
मदनबल घटत समता प्रगट, प्रगट अभय ममता तजत ।
तजत न स्वभाव निज अपर तज, तज सुदुख शिव सुख भजत ।८

२४. ध्यानत चक्री जुगलिये, भवनपती पाताल ।
स्वर्ग इन्द्र अहमिंद्र सब, अधिक अधिक सुख भाल ॥
अधिक अधिक सुख भाल, काल तिहु नत गुनाकर ।
एकसमै सुख सिद्ध, रिद्ध परमातम पद धर ॥
सो निश्चय तू आप पापविन क्यों न पिछानत ।
दर्श ज्ञात थिर थाप, आप में आप सुध्यानत ॥९॥

२५ भोग रोग से देखि, जोग उपयोग बढ़ायो ।
आनभाव दुख-दान, ज्ञानको ध्यान लगायो ॥
सकलप विपलप अल्प, बहुत सबही तज दीनें ।
आनंद कद स्वभाव, परम समतारस भीनें ॥
ध्यानत अनादि भ्रमवासना, नास कुविद्य मिट गई ।
अंतर बाहर निर्मल फटक, झटक दशा एसी भई ॥१०॥

(पं० ध्यानतरायजी ध्यानतविलास)

२६. निशदिन ध्यान करो निश्चय सुज्ञान करो,
कर्म को निदान करो आवै नांहि फेरिकै ।
मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो,
धर्म को प्रकाश करो शुद्ध दृष्टि हेरिकै ॥

ब्रह्म को विलास करो आतम निवास करो,
देवसजवास करो महा मोह जेरिकैं ।
अनुभव अभ्यास करो थिरतामें वास करो,
मोक्ष सुख रास करो कहूं तोहि टेरिकैं ॥९४॥
(भैया भगवतीदास ब्रह्मविलास)

इसी विषय में तारण स्वामी क्या कहते हैं सो नीचे वाक्यों मे पढ़िये –

२७. ओंकारस्य उर्धस्य, उर्द्ध सद्भाव शाश्वतं ।
विन्दस्थानेन तिष्ठन्ति, ज्ञानं मयं शाश्वतं ध्रुव ॥१॥

भावार्थ.– ॐकार देव उर्द्धगति स्वभाव लिए शाश्वते मोक्षस्थान ज्ञानमई विराजमान है जो शाश्वते ध्रुवनाम अनन्त है ।

२८ वीर्यं अंकुरणं शुद्ध त्रैलोक लोकितं ध्रुव ।
रत्नत्रय मयं शुद्ध, पण्डितो गुण पूज्यते । ७।

भावार्थ – जिनके शुद्ध स्वाभाविक रत्नत्रयमयी वीर्य का अंकुर उत्पन्न हो गया है वे ही तीन लोक में ध्रुव हैं वे ही पण्डित हैं, उन्हीं के गुण पूज्य हैं ।

२९. चेतना लक्षणो धर्मो, चेतयंति सदा बुधैः ।
ध्यानस्य जल शुद्धं, ज्ञान स्नान पण्डितः ।९॥

भावार्थ – आत्मा का धर्म चेतना लक्षणमयी है जिसका अनुभव सदा बुद्धिमान जन करते हैं । ध्यान के लिए शुद्ध जल ज्ञान ज्ञान है उस जल से पंडित जन स्नान करते हैं ।

३०. प्रक्षालितं मनं चपलं, त्रिविधि कर्म प्रक्षालितं ।
पंडितो वस्त्र संयुक्तं, आभरणं भूषणं क्रियते ॥१५॥

भावार्थ - चंचल मन भी धुल जाता है तथा तीन प्रकार के द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म भी धुल जाते हैं, तब पंडितात्मा वस्त्र पहिनता है व आभूषण से सुशोभित होता है ।

३१ एतत्सम्यक्त्व पूजस्य, पूजा पूज समाचरेत् ।
मुक्ते श्रियं पथं शुद्धं, व्यवहार निश्चय शाश्वत ॥८२॥

भावार्थ – इस तरह भले प्रकार पूजने योग्य परमात्मा की पूजा करना उचित है। यही व्यवहार व निश्चय मोक्ष मार्ग शाश्वत है।

([illegible] – पूजा पाठ)

३२. ओंकार वेदान्त शुद्धात्म तत्वं, प्रणमिता नित्य तत्वार्थ सार्थं ।
ज्ञानं मयो सम्यग्दर्सनेत्वं, सम्यक्त्व चरण चैतन्य रूप ॥९॥

भावार्थ – ॐकार रूप वेदान्त शुद्ध आत्मतत्व है, वही तत्वार्थ का सार है। वही सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्रमयी है। वही चैतन्य रूप है उसको मैं नमस्कार करता हू।

३३. श्री केवलं ज्ञान विलोक तत्व, शुद्ध प्रकाशं शुद्धात्म तत्व ।
सम्यक्त्व ज्ञानं चरण च सौख्यं, तत्वार्थ सार्द्धं त्व दर्शनेत्वं ॥७॥

भावार्थ – जिस तत्व को केवल ज्ञान ने देखा है, जिसका प्रकाश शुद्ध है जो आत्मा का स्वरूप है, जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र वो सुखरूप है वही तत्वार्थ का सार है, उसे तुम देखो।

३४. जे सप्त तत्वं षट् द्रव्य युक्त, पदार्थं काया गुणाचेत नेत्वं ।
विश्वं प्रकाशं तत्वानि वेद, श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्व ॥१०॥

भावार्थ – मै श्रुत ज्ञानरूप शुद्ध आत्मा तत्व को जानता हू, जो सात तत्व, छट द्रव्य, नौ पदार्थ पचास्तिकाय वतानेवाला है, जिसमे चेतनपना है और जो सर्व विश्व को प्रकाश करने वाला है।

३५. देवं गुरुं शास्त्र गुणानि नित्य, सिद्धं गुणं सोलह कारणेत्वं ।
धर्मं गुण दर्शन ज्ञान चरणं, मालाय गुथित गुण सस्य रूपं ॥११॥

भावार्थ – मै गुणमयी माला में देवशास्त्र गुरु के गुणो को सिद्धो के गुणो सोलह कारणो को, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहता हू।

३६ पड़िमाय ग्यारा तत्वानि पेषं, व्रतानि शीलं तपदान चिन्त ।
सम्यक्त्व शुद्धं ज्ञान चरित्रं, सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्त ॥१२॥

३१ एतत्सम्यक्ता पूजस्य, पूजा पूज समाचरेत् ।
मुक्ते श्रियं पथं शुद्धं, व्यवहार निश्चय शाश्वत ।।३२।।

भावार्थ – इसतरह भले प्रकार पूजने योग्य शुद्ध आत्माकी पूजा करना उचित है। यही व्यवहार व निश्चय मोक्ष मार्ग शाश्वत है।
(तारणपंथ – पूजा पाठ)

३२. ओंकार वेदान्त शुद्धात्म तत्वं, प्रणमिगा नित्य तत्वार्थ सार्धं ।
ज्ञानं मयो सम्यग्दर्शनेत्व, सम्यक्त्व चरण चैतन्य रूप ।।१।।

भावार्थ – ॐकार रूप वेदान्त शुद्ध आत्मतत्व है, वही तत्वार्थ का सार है। वही सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्रमयी है। वही चैतन्य रूप है उसको मै नमस्कार करता हू।

३३ श्री केवलं ज्ञान विलोक तत्वं, शुद्ध प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं ।
सम्यक्त्व ज्ञानं चरणं च सौख्यं, तत्वार्थ सार्द्धं त्व दर्शनेत्व ।।७।।

भावार्थ – जिस तत्व को केवल ज्ञान ने देखा है, जिसका प्रकाश शुद्ध है जो आत्मा का स्वरूप है, जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र वो सुखरूप है वही तत्वार्थ का सार है, उसे तुम देखो।

३४. जे सप्त तत्वं षट् द्रव्य युक्तं, पदार्थं काया गुणाचेत नेत्वं ।
विश्वं प्रकाशं तत्वानि वेदं, श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्व ।।१०।।

भावार्थ – मै श्रुत ज्ञानरूप शुद्ध आत्मा तत्व को जानता हू, जो सात तत्व, छट द्रव्य, नौ पदार्थ पचास्तिकाय बतानेवाला है, जिसमे चेतनपना है और जो सर्व विश्व को प्रकाश करने वाला है।

३५ देव गुरूं शास्त्र गुणानि नित्य, सिद्धं गुण सोलह कारणेत्वं ।
धर्मं गुण दर्शन ज्ञान चरणं, मालाय गुथितं गुण सस्य रूप ।।११।।

भावार्थ – मै गुणमयी माला मे देवशास्त्र गुरु के गुणो को सिद्धो के गुणो सोलह कारणो को, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहता हू।

३६ पड़िमाय ग्यारा तत्वानि पेषं, व्रतानि शीलं तपदान चिन्तं ।
सम्यक्त्व शुद्धं ज्ञान चरित्रं, सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्तं ।।१२।।

४१. अप्पा पर पिचान्नो, पर पज्जाय [illegible] [illegible] ।
ज्ञान सहावं सुद्ध, सुद्धं चरणस्य अन्मोय संजुत्तं ॥१८॥

भावार्थ – जिन्होंने अपनी आत्मा के [illegible] और अपनी आत्मा से भिन्न ऐसे परपुद्गलादि के स्वरूप को जान लिया है, जो आत्मा के स्वभाव मे अलग विकार करने वाली पर पर्याय रूपी पर्यायों के समूह से रहित है एव जो आत्मीक ज्ञान की सहायता से [illegible] [illegible] है, शुद्ध आत्मा के अमूल्य चारित्र कर सहित है।

४२. अप्पा अप्प सहावं, अप्पा सुद्धप्प विमल परमप्पा ।
परम सरुवं रुवं, रुवं तिक्तं च विमल ज्ञानं च ॥१०॥

भावार्थ – यह आत्मा अपने स्वरूप का ध्यान करके कर्ममलरहित परमात्मा बन जाता है, जो आत्मा का उत्कृष्ट स्वरूप है। क्षायिक केवल ज्ञानकी प्राप्ति होना ही आत्मा का धन है। इस प्रकार जिन्होंने अपने आत्माको परमात्मा बनाया है, ऐसे परमात्मा को नमस्कार है।

(विचारमत – कमल बत्तीसी)

४३. परम गुरुह उवएसिउ लोयह, ज्ञान विज्ञानह भेउ ।
भय विनास भव्य तं मुनहु, उपनो दाता देउ ॥२॥

भावार्थ – परमगुरु श्री अरहंत ने ससार को नाश करने वाले, भेद-विज्ञान का भेद लोगों को उपदेश किया है। हे भव्य! उस भेदविज्ञान का मनन करो वे अरहत परमानन्द के दाता देव प्रकाशमान हैं।

४४ जिन उवएसिउ भव्या लोया, अर्थति अर्था जोइ ।
षट्कमलह तं विमल सुनिर्मल, जिम सुक्ष्म कम्म गलेइ ॥५॥

भावार्थ – जिन्होंने भव्य लोगो को, पदार्थों को स्वयं देख कर वैसे ही पदार्थों का उपदेश किया है व परम निर्मल छ. कमलो को मल सहित बताया है या छ अक्षरी मत्र का उपदेश दिया है जो अत्यन्त निर्मल है इस मत्र के द्वारा परमात्मा के ध्यानसे सूक्ष्म कर्म के बन्ध गल जाते है वे छ· अक्षर ये है – ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौ ह्रः।

(ममलपाहुड – ध्यावहुरो)

५० [illegible] [illegible], [illegible] ज्ञान [illegible] ।
त [illegible] [illegible],
[illegible] ॥[illegible]॥

भावार्थ – अब यहां [illegible] कल्याणक पर [illegible] है । [illegible] श्री तीर्थंकर भगवान रत्नत्रय में रमण [illegible] प्रगट होते हुए अज्ञान [illegible] जब मेरे भीतर निश्चय रत्नत्रय [illegible] के द्वारा परमात्मा का उदय हो गया तब मेरे [illegible] में ज्ञानानन्द का प्रकाश हो गया तब मैं आत्मज्ञान प्रकाशक [illegible] आदि शब्दों के द्वारा शुद्ध भाव में रमण करने लगा जिनकी महानता से आत्मा मुक्ति को स्वयं प्राप्त कर लेता है ।

([illegible] – [illegible])

५१. चिदानन्द आनन्दं, परम सुभावेन कम्म संषियनं ।
सींह सुभाव सुदिट्ठं, गयद जूहेन दिट्ठि विरयति ॥३०९॥

भावार्थ – यह आत्मा चिदानन्दमई परमात्मा के स्वभाव के समान है ऐसी भावना करने से कर्मों का क्षय हो जाता है । जैसे सिंह को देख ही हाथियों के समूह भाग जाते हैं, दृष्टि से बाहर हो जाते हैं ।

५२. ज्ञानं दसन सम्म, दानं लाभं च भोय उपभोय ।
वीर्यं सम्मत सुचरनं, लब्धि संजुत्त सिद्ध सपत्तं ॥३२४॥

भावार्थ – अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र इन नौ लब्धियों के साथ वे अरहंत सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं ।

५३. तत्वं च तत्व रूवं, तत्वं च परम तत्व परमेस्टी ।
जिन वयनं जयवंतं, जयवंतं लोयालोय विमलं च ॥५४८॥

भावार्थ – तत्वों में मुख्य तत्व आत्मा का स्वभाव है अथवा तत्वों में श्रेष्ठ तत्व अरहन्त परमेष्टी है । यह जिनवाणी जयवन्त रहो जिनके प्रताप से परम तत्व का पता लगता है, निर्मल ज्ञान जयवन्त हो जो लोकालोक को जानता है ।

(उपदेश शुद्धसार से)

५४. अप्पापरं पिच्छंतो, परचयं वि अप्प सुद्ध सहमाओ ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥२१६॥

भावार्थ – जो आत्मा और अनात्मा को जान कर अपने शुद्ध स्वभाव का ही अनुभव करता है वह आत्मा शुद्ध आत्मा या परमात्मा होकर निर्वाण को पाता है ।

५५. अरहंतं सर्वज्ञं, केवल भावेन सुद्ध स सरूवं ।
अप्पा परमानंदं, अठारह दोस विवज्जियो विमलं ॥६३५॥

भावार्थ –केवल ज्ञान से शुद्ध अपने स्वरूप में रहने वाले अरहंत सर्वज्ञ भगवान होते हैं, उनका आत्मा परमानन्द का अनुभव करता है । वे अरहन्त अठारह दोषों से रहित वीतराग होते हैं ।

५६. ज्ञान सहावे चित्तं, चिन्ता संसार तजनि परिनामं ।
चिन्त अप्प सहाव, अप्पा परमप्प केवलं सुद्ध ॥६८०॥

भावार्थ - केवली महाराज का चित्त ज्ञान स्वभाव में लय हो गया है, संसार के भावों की या सांसारिक अवस्थाओं की चिन्ता का विचार छोड़ दिया है । वे आत्मीक स्वभाव का ही अनुभव कर रहे हैं, उनके अनुभव में आत्मा परमात्मा रूप केवल शुद्ध झलक रहा है ।

५७. सर्वं भेद विज्ञानं, नय विभागेन सहहं सुद्ध ।
अप्प सरूप दिट्ठदि, नय विभागेन सार्द्ध दिट्ठं ॥६६३॥

भावार्थ:–भेद विज्ञान निश्चयनय के द्वारा सबको विभाग करके अपने शुद्ध स्वरूप का श्रद्धान करता है नय विभाग के साथ जो निर्मल दृष्टि है उस आत्मा के स्वरूप को यथार्थ देखती है ।

(ज्ञान समुच्चय सार)

५८ नमामि सततं भक्त्या, अनादि सादि शुद्धये ।
करि पुर्नं अर्थं सुद्धं, पंचदीप्ति नमाम्यहं ॥३॥

भावार्थ – मैं निरन्तर भक्ति पूर्वक उनको और सब पदार्थों को जो पाप [illegible] पदों में ज्ञानरूप हो रहा है । [illegible] अनादि [illegible] शुद्ध होने के लिए, नमस्कार करता हूं ।

५९. परमेष्ठी [illegible] ।
ज्ञान [illegible] ॥४ ।

भावार्थ – मै [illegible] मे आचरण करने वाले [illegible] परमात्मा को नमस्कार [illegible] ।

६०. सार सारस्वती [illegible] ।
ॐह्रिय श्रिय सुय , ति [illegible] प्रति पूर्णितं ॥११॥

भावार्थ – अर्हन्त भगवान के [illegible] विराजित ॐ, ह्री, श्री उन तीन [illegible] परिपूर्ण [illegible] श्रुत[illegible] उत्तम सरस्वती या जिनवाणी [illegible] ।

६१. देवं श्रुतं गुरुं वन्दे, ज्ञानेन ज्ञानालकृत ।
वोच्छामि श्रावकाचार, व्रत सम्यग्दृष्टित । १४॥

भावार्थ – आत्म ज्ञान के द्वारा जहा ज्ञान की शोभा हो रही है सर्वज्ञदेव को उनकी जिनवाणी को, उसके अनुसार चलने वाले गुरु नमस्कार करता हू । बारह व्रत और सम्यग्दर्शन रूप श्रावको आचार को कहूगा ।

६२. आचार्यं आचरणं धर्मं, ति अर्थ शुद्ध दर्शन ।
उपाध्याय उपदेशति, दशलक्षण धर्मं ध्रुव ॥३३७॥

भावार्थ – आचार्य परमेष्ठी तीन अर्थरूप अर्थात रत्नत्रय स्वरूप धर्म का तथा मुख्यता से शुद्ध सम्यग्दर्शन का आचरण आप करते है व कराते है। उपाध्याय परमेष्ठी यथार्थ दश लक्षण मय धर्म का पाठ पढाते हैं।

(श्रावकाचार)

६३ काष्ट पाषाण दिष्टं च, लेप दिष्टि अनुरागतः ।
पाप कर्मं च वर्धन्ति त्रिभंगी असुह दलं ॥३६॥

भावार्थ – राग भाव मे काठ व पाषाण की मूर्ति देखना व चित्रो को देखना पापकर्म के वध का कारण है ये तीनो अशुभ भावो के कारण है ।

५. जीव का एकत्व

इस संसार मे इस जीव को अकेले ही भ्रमण करना पड़ता है । अकेला जन्मता, मरता, बूढ़ा होता, रोगी होता, शोकी होता, होता, सुखी होता, पाप करता, पुण्य करता, धर्म ध्यान करता, अपनी करनी का फल अकेला ही पाता है । कोई दूसरा न साथी है न साथी है । सुख दुख का न कोई छीनने वाला है न देने वाला है । अपने अन्तरग के भावो पर ही सुख दुख है और भावो का बदलना अपने आधीन है ।

जिस कुटुम्ब मे जन्मता है, उन्ही को अपना साथी मान लेता है पर साथ कोई नही देते है । वृक्ष के बसेरे के समान स्वार्थ साधन कर जहा-तहा चले जाते है वैसे ही कोई नर्क मे कोई तिर्यंच गति मे, कोई देव मनुष्यो से आकर एकत्रित होते और आयु पूर्ण कर अपना अपनी बाट जोहते है ।

जो जैसा आयु कर्म बाधता वैसी गति मे चला जाता है । जैसे चार भाइयो मे एक ज्यादा धर्मात्मा हो मरकर देव होवे, एक सामान्य धर्मात्मा हो मनुष्य होवे, एक कम पापी हो पशु होवे, एक बहुत पापी हो नर्क चला जावे फिर कोई किसीको याद नही करता है ।

एक कुटुम्ब मे दस प्राणी है । एक मनुष्य चोरी कर १०० रुपये लावे तो पाच उसे सराहे और पाच उसकी निन्दा करे तो सराहनेवाले पापी और निन्दा करनेवाले पुण्य के भागी होगे । जैसे - एक घर मे २ भाई है । एक गृह कुटुम्ब मे रहते हुए भी, जल मे कमलवत अलिप्त रहे और दूसरा विषय भोगो को उद्देश्यमान उनमे लिप्त रहे तो वह नरक का पात्र होवेगा और अलिप्त रहनेवाला स्वर्ग या मोक्ष का भाजन होगा ।

स्त्री- पति से स्नेह, शरीर पालन व कामतृप्ति जान के करती है ।

पति- स्त्री से स्नेह, गृह कार्य, सन्तान प्राप्ति, कामतृष्णा के शमन हेतु करता है ।

मान कम या ज्यादा, लोभ कम या ज्यादा। क्रोधादि २५ कषाय होते जाते हैं। तब मालूम होगा, ये विकार आत्मा के नहीं हैं। यह औपाधिक अशुद्ध और रोगी भाव है।

एक साधारण आदमी भी क्रोधी, मानी, मायाचारी, लोभी, शोकी दुखी, कामी, भयभीत आदमी को बुरा कहेगा व उसके उल्टे क्षमावान, विनयवान, सरल व्यवहारी, सन्तोषी ब्रह्मचारी, धीरवान, निर्भय, प्रेमी आदि को अच्छा कहेगा। इसी प्रकार सभा में ५०–१०० आदमी मैले कपड़े पहिने बैठे हों तो सबके वस्त्र मैले दिखेंगे और वे ही स्वच्छ नवीन वस्त्र धारण करे हों तो सुहावने मालूम होवेंगे यही मैल क्रोधादिरूप आत्मा स्फटिक पर चढ़ा हुआ संसार का कारण बन जाता है।

क्रोधी.– क्रोधी स्वयं अपने को आपे से बाहर पाता है, आकुलित होता है, दुखित होता है, विवेकहीन, सत्य असत्य का विचारहीन, बकवादी, नेक शिक्षा ग्रहण नहीं करता है। जब क्रोध चला जाता है तब अपने को शान्त, निराकुल, सुखी समझता है। मिष्टभाषी, विचारवान, विवेकी रहता है। जो क्रोध पिशाच के वश नहीं है या क्रोधरूपी मदिरा का पान नहीं किया है वही अपने आपे में है।

मानी:– इसी तरह किसी को अभिमान हो, मैं उच्चकुल का हूं, उच्चजाति हूं, धनवान हूं, रूपवान हूं, बलवान हूं, अधिकारी व विद्वान हूं, तपस्वी हूं यह भी विकार है। वह भी दूसरे से घृणा करेगा, विवेकहीन होगा, शरीर से विनय नहीं करेगा और उसको दुःख रहेगा कि कोई मेरा अपमान न कर दे। और अच्छी शिक्षा भी ग्रहण न करेगा। अगर सन्तोषी है मानरहित, मार्दवगुण का धारी है तो वह कारणकार्य का विचार कर ठीक वचन बोलेगा, उसकी क्रिया प्रेम, दयापूर्ण रहेगी, सुखी रहेगा। जिसे मानमदिरा ने बावला नहीं बनाया है व अंधा नहीं किया है वही संसार में जग रहा है और आत्मा को पहिचानता है।

माया– माया के आवेश में यह प्राणी बड़ा ही गन्दा रहता है, उसके भावों में कुटिलता बस जाती है, अपने स्वार्थ के वश दूसरे के उदार-विचारों को कुचलने का विचार करता रहे। वचन यद्यपि मीठे बोलता है पर विष से भरे हुए ही बोलता है और ठगने का भाव भरा रहता

मोह – वैसेही मोहनीय कर्मकी तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर मन्दतम के योगसे अनेक प्रकार कर्मफल का दाता है। यदि मोहनीकर्म का सयोग न होगा तो जीव अपने वीतराग निराकुल उत्तम क्षमादि स्वभाव मे प्रकाशित होकर शान्ति रहे। जैसा इस जीव का स्वभाव शान्त है वैसी शान्ति, चन्दन, मोती की माला, अर्क कपूर, चन्द्र की चादनी, वर्फ, जल, गगा के पानी, क्षीरसमुद्र, केले के वन, कमल के वगीचा, नन्दनवन की वाटिका म है । न सूर्य के आताप से प्रकाशित पृथ्वी मे है । इस मोहनी के प्रभाव मे हमारे दो प्रकार के भाव हो जाते है जो नीचे की तालिका मे दर्ज है.–

अशुभभाव	शुभभाव
हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, जुआ खेलना, मास खाना, मदिरापान, शिकार, वेश्या प्रसग परस्त्री प्रसग, तीव्र शोक, दु:ख, परका अपकार, क्रोध, मान, माया लोभ हास्य, रति, अरति, भय, लम्पटता आदि अशुभ भाव है इनसे राग करना मोह या मिथ्या है।	दया, आहार, औपधि, अभय, ज्ञानदान, सत्य भापण, ब्रह्मचर्य-पालन, सन्तोप, परोपकार, सेवा-टहल, यथायोग्य विनय, हितकारी वर्त्तन परमात्मा की भक्ति, धर्म-शास्त्र का पठन, गुरु सेवा, सयम पालनादि शुभ भाव है । जिससे इहलोक और परलोक दोनो सुधर जाते है और आत्म शक्ति की जागृति होती है ।

जैसे पानी के १४ वर्तनो मे से पहले मे लाल रंग सवसे अधिक हो फिर कमती कमती दस वर्तनो मे हो, ग्यारहवे से तेरहवे तक पवन की चचलता हो, चौदहवे मे चचलता भी नही होवे पर मिट्टी हल्की सी मिली हो और पन्द्रहवे मे शुद्ध पानी हो, न रग न चचलता और न मिट्टी हो तो विचारा जावे कि पानी तो सव मे वरा-वर है, अन्तर डालनेवाली पर वस्तु का सयोग है (रग, हवा, मिट्टी का सयोग) । इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध, ससारी आत्मा कम या ज्यादा कर्म रज से मिली है इसलिए नाना प्रकार रज मिश्रित जल के समान है पर स्वभाव सवका एक है । इससे सिद्ध हुआ कि यह विभाव जीव का नही है । सव शरीररूपी पुतले का कर्म का भाव है । जैसे:-

सूर्य का स्वभाव पूर्ण प्रकाशक है पर मेघ आच्छादित कर देते हैं वैसेही ज्ञान को कर्मो ने ढक लिया है पर ज्ञान मे तो पूर्ण जानने की शक्ति है वैसे ही शुद्ध जल मे ऐसी निर्मलता है कि अपना मुख देख लो पर मिश्रित जल में नही।

स्वभाव हर जीव का ज्ञानमयी है जितना भी ज्ञान बढता है उतना ही अज्ञान कम होता जाता है कही बाहर से दिया या लिया नही जाता है। यदि किसी को १००० रु० की थैली में से १०० रु० दिया जावे तो देने वाले के पास कम होकर ९०० रुपये रह जाते हैं। परन्तु ज्ञान देन मे ऐसा नही, देने वाले का घटता नही वरन् देने लेने, दोनो का बढता है। इसमे सिद्ध है कि हरएक जीव में उतना ही ज्ञान है जितना कि एक सिद्ध भगवान मे है। मोह के मैल से यह सुख अनुभव मे नही आता है पर जितना जितना मोह हटता जाता है वैसे वैसे आनन्दमय, प्रकाशवान अमूर्त्तीक, गन्ध, रस, वर्ण, स्पर्श से रहित शुद्ध चैतन्य का प्रकाश दिखाई देने लगता है।

हर एक आत्मा चैतन्यमयी आकार रखता है क्योकि जिसका कोई आकर नही होता वह शून्य अभावमय पदार्थ होता है पर जीव ऐसा नही है वह अनन्त गुणो का धारी द्रव्य है इससे जिस शरीर में रहता है उसी प्रमाण उसका आकार धारणा करता हैं। जैसे — दीपक के प्रकाशको जितना क्षेत्र देवोगे उतना ही प्रकाश उसका फैल जावेगा वैसेही इस जीव का आकार हाथी घोडा, ऊट, लोटा, घडा, लट, चीटी, भ्रमर, नेवला, सर्प, मोर, वृक्षादि जैसा शरीर पाता है इसमें इतनी भी शक्ति हैं सारे ससार मे भी फैल जाता है। स्वभावापेक्षा लोकव्यापी हैं, शरीरापेक्षा शरीर प्रमाण हैं नाम कर्म के कारण सकोच विस्तार प्राप्त करता हैं।

ऐसा अमूर्तीक ज्ञानाकार ज्ञानस्वरूप वीतराग आनन्दमय जीव द्रव्य अपनी अपनी एकता, अपनी अपनी सत्ता को भिन्न भिन्न ही रखता है एक दूसरे जीव से कोई सम्बन्ध नही है। जैसे — गेहू के दस करोड दाने समान एक स्थल पर रक्खे हैं, हर एक दाना गेहूका अलग अलग है। यद्यपि गेहू के गुणो के अपेक्षा सब दाने समान हैं पर सत्ता

अलग अलग है। व्यापारी किसीको १००, १०००, १००००, १०००००
दाने बेच देता है। लेनेवाला कोई भी न आटा बनाते हैं कोई उनका
बनाते है। आटे की रोटी पूरी बनाये जाते हैं। खाने पर उसका रस,
रुधिर, मल आदि बनता है। जब कि बहुत से गेहूं आटे रूप में हैं,
कितने गेहूं रूप में हैं। सबकी एक ही समान होती या एक साथ सब
जाते या सब पिसने या चबाये जाते सो नहीं है। यद्यपि थोड़ा सब
समान है तो भी हरएक दाना अलग अलग सत्ता रखता है उसी प्रकार
जीव भी अपनी अपनी भिन्न सत्ता रखता है। कोई एक ही समय में
शरीर मे आता है, कोई जाता है, कोई रोता है, हंसता है, सुखी है,
दुखी है, क्रोधी है, दयारूप है, मानी है, ममतावान है, कोई सोता है,
जागता है, पढता है, पढाता है, लेता है, देता है, पालता है, लूटता है,
न्याय करता है, दड भोगता है, लिखता है, रखता है सीता है, धोता
है, नहाता है, गाता है, बजाता है आदि भिन्न भिन्न क्रियाये हैं तब
एक ही जीव की सब ही क्रियाय नही बन सकती है। जैसे एक ही
समय मे जब एक चोरी करता, दूसरा बचाता है। एक मारता तब
दूसरा रक्षा करता है। एक ठगा जाता तब दूसरा दान करता है।

जितने प्रकार के शरीर विश्व मे हो सकते है उतने प्रकार के
शरीर को एक ही जीव पुन. पुन जन्म लेकर मर मर धारण कर लेवे
परन्तु एक जीव दूसरे जीव के साथ मिल कर एक नहीं हो सकता है
और न एक जीव के खड हो सकते हैं। एक के दो या अधिक बनते हैं।
हरएक जीव अकेला निराला स्वाधीन है। हरएक जीव मे न परिमाणु
है न स्कन्ध है, न कर्म है, न पुण्य है न पाप है। न राग है न द्वेष है
न मोह है। न सासारिक सुख है न दुख है। न शुभभाव है न अशुभ-
भाव है। न देवनारकी तिर्यञ्च मनुष्य है न स्त्री, पुरुष, बालक नपु
सक है। न स्थावर है न त्रस है, न ब्राह्मण, क्षत्री आदि वर्ण है न शुद्र
मलेच्छादि है। न बडा छोटा, न साधु गृहस्थ, बधा न खुला है। सबसे
निराला शुद्ध ज्ञाता दृष्टा वीतराग आनन्दमयी परमात्मा समान है।
सिद्ध परमात्मा भी अनेक है वे अपनी अपनी सत्ता भिन्न भिन्न रखते
हैं। अपने ज्ञानानन्द का भिन्न भिन्न अनुभव करते हैं पर जीव द्रव्य
भाव नो कर्म से रहित है (रागादि भावकर्म ज्ञानावरनादि द्रव्य कर्म
शरीरादि नोकर्म कहाते हैं)

जैनाचार्य इसी विषयो पर क्या कहते है – देखिए कुदकुदा-चार्य द्वादशानुप्रेक्षा ।

१. एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीह संसारे ।
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१४।।

भावार्थ – यह ससारी प्राणी अकेला ही कर्मो को वाधता है, अकेला ही इस अपार ससार मे भ्रमण करता है, अकेला ही यह जन्मता है, अकेला ही मरता है, अपने कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है ।

२. मणिमंतो सहरक्खा हयगयरहओ य सयलविज्जाओ ।
जीवाण ण हि सरणं तिसु लोए मरण समयम्हि ।।८।।

भावार्थ– जव प्राणी के मरण का समय आता है तव मणि, मत्र, औषधि, राख, घोडे, हाथी, रथ व सर्व विद्याये कोई भी प्राणी को मरण से वचा नही सकती हैं ।

३. अरुहा सिद्धा आइरिया उवझाया साहू पचपरमेट्ठी ।
ते वि हु चेट्ठदि जम्हा तम्हा आदा हु मे सरणं ।।१२।।

भावार्थ – अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये पाचो पर-मेष्ठी आत्मा का ही अनुभव करते है । इसलिये मेरेको भी एक अपना आत्मा ही शरण है ।

४. सम्मत्त सण्णाणं सच्चारित्तं च सत्तवो चेव ।
चउरो चेट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणम् ।।१३।।

भावार्थ – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व सम्यक्तप ये चारो ही आत्मा के ध्यान से सिद्ध होते है इसलिये मेरे को एक अपना आत्मा ही शरण है ।

श्री कुदकुंदाचार्य प्रवचनसार मे कहते हैं–

५. णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारण तेसिं ।
कत्ता ण कारयिदा अणुमत्ता णेव कत्तीण ।।७१।।

भावार्थ – निश्चय से मैं आत्मा अकेला हू, न मैं देह हू, न मैं वचन हू, न मैं मन हू, न मैं मन, वचन काय का कारण हू, न मैं उनका कर्ता हू, न करानेवाला हू, न करनेवालो की अनुमोदना करनेवाला हू ।

श्री शिवकोटाचार्य भगवती आराधना में कहते हैं –

६. णीया अत्था देहा, मित्ता य सगा ण कस्स इह होंति ।
परलोग मुणिणता, जदि वि दइज्जंति ते सुट्ठु ॥१७५०॥

भावार्थ – परलोक को जाते हुए जीव के साथ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, देहादिक परिग्रह कोई नहीं जाते हैं यद्यपि इसने इनके साथ बहुत प्रीति करी है तो भी ये निरर्थक हैं, साथ नहीं रहते ।

७ होऊण अरी वि पुणो, मित्त उवकारकारण होइ ।
पुत्तो वि खणेण अरी, जायदि अवयारकरणेण ॥१७६१॥
तम्हा ण कोई कस्सइ, सयणो व अत्थि ससारे ।
कज्जं पडि हुति जगे, णीया व अरी य जीवाण ॥१७६२॥

भावार्थ – वैरी भी हो परन्तु यदि उसका उपकार करो तो मित्र हो जाता, तथा अपना पुत्र भी अपकार किये जाने पर क्षण में अपना शत्रु हो जाता है, इसलिये इस जगत मे कोई किसी का मित्र व शत्रु नही है, स्वारथ के वश ही जगत मे मित्र व शत्रु होते है ।

श्री पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं –

८. वपुर्गृह धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रव. ।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढ स्वानि प्रपद्यते ॥८॥

भावार्थ – शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु आदि सर्वका स्वभाव अपने से जुदा है तो भी मूढ पुरुष उनको अपना मान लेता है ।

श्री पूज्यपाद स्वामी समाधिशतक मे कहते है –

९. मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय ।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय ॥२६ ।

भावार्थ – यह जगत मेरे सच्चे शुद्ध स्वरूप को देखता ही नही है, इसलिये न मेरा शत्रु हो सकता है न मित्र। तथा जो ज्ञानी मेरे शुद्ध-स्वरूप को देखता है वह भी मेरा शत्रु या मित्र नही हो सकता है ।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासन मे कहते है –

१०. शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलं, चिरपरिचितदारा द्वारमापद्गृहाणाम् ।
विपरिमृशत पुत्राः शत्रव. सर्वमेतत्, त्यजत भजत धर्म्मं निर्म्मलं शर्म्मकामाः ॥६०॥

भावार्थ – यह तेरा घर तुझे मरणादि आपत्तियो से बचा नही सकता, ये तेरे बाधव तेरे स्नेह पाश मे बाधनेवाले है, दीर्घकाल की परिचित स्त्री आपदाओ के घर का द्वार है, ये तेरे पुत्र है, वे भी तेरी आत्मा के शत्रु है। इन सर्व से मोह छोड़। यदि तू सहज सुख को चाहता है तो निर्मल धर्म का सेवन कर।

११ क्षीरनीरवदभेदरूपतस्तिष्ठतोरपि च देह देहिनो ।
भेद एव यदि भेदवत्स्वलं बाह्यवस्तुषु वदात्र का कथा ॥२५३॥

भावार्थ – जिस देह के साथ इस जीव का दूध पानी के समान सम्बन्ध चला आ रहा है वह देह ही जब जीव से भिन्न है तब और बाहरी चेतन व अचेतन पदार्थों की क्या? वे तो अपने से भिन्न ही है। तैजस व कार्मण शरीर भी जीव का नही है।

१२. अजातोऽनश्वरोऽमूर्त्त कर्ता भोक्तासुखी बुधः ।
देहमात्रो मलैर्मुक्तो गत्वोर्द्धमचल. प्रभु ॥२६६॥

भावार्थ – यह आत्मा कभी पैदा हुआ नही इससे अजन्मा है, कभी नाश नही होगा इससे अविनाशी है, अमूर्तीक है, अपने स्वभावो का कर्त्ता व अपने सहज सुख का भोक्ता है, परम सुखी है, ज्ञानी है, शरीर मात्र आकारधारी है, कर्ममलो से रहित लोकाग्र जाकर ठहरता है, निश्चल है तथा यही प्रभु है, परमात्मा है।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासन मे कहते है –

१३. तथाहि चेतनोऽसख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः ।
शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञानदर्शन लक्षण· ॥१४७।

भावार्थ· मै चैतन्य हू, लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी हू, अमूर्तीक हू, शुद्धात्मा हू, सिद्ध समान हू व ज्ञानदर्शन लक्षणधारी हू।

श्री अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में कहते हैं:–

१४ अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगंधरसवर्णैः ।
गुण पर्ययसमवेतः समाहित. समुदयव्ययध्रौव्यैः ॥९॥

भावार्थ – यह आत्मा [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] से रहित ज्ञानादि गुण व उनकी [illegible] पर्यायों को [illegible] । [illegible] है परिणमन की अपेक्षा उत्पाद [illegible] है ।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसार में कहते हैं –

१५ जस्स ण कोहो माणो माया लोहो य सल्ल लेस्साओ ।
जाइजरामरण विय णिरजणो सो अह भणिओ ।।१९।।

भावार्थ – जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न लेश्याए है, न जन्म है, न जरा है, न मरण है वही जो निरजन है सो मै हू ऐसा कहा गया है ।

श्री योगेन्द्राचार्य योगसार मे कहते है –

१६. जो परमप्पा सो जि हउ जो हउ सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु । २२ ।

भावार्थ – जो परमात्मा है, वही मै हू जो मै हू वही परमात्मा है अर्थात मेरा स्वभाव परमात्मा रूप है । हे योगी! ऐसा जान कर और विकल्प न कर ।

श्री अमितिगति आचार्य सामयिकपाठ मे कहते है –

१७ एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वता कर्मभवाः स्वकीयाः ।।२६।।

भावार्थ – मेरा आत्मा सदा ही एक अविनाशी निर्मलज्ञान स्वभावी है अन्य रागादि भाव सब मेरे स्वभाव से बाहर है, क्षणिक है व अपने अपने कर्मो के उदय से हुए है ।

श्री अमितिगति आचार्य तत्वभावना मे कहते है.–

१८. न वैद्या न पुत्रा न विप्रा न शक्रा, न कांता न माता न भृत्या न भूपा ।
यमालिंगितुं रक्षितुं संति शक्ता, विचिन्त्येति कार्यं निज कार्य मार्यैः ।।३३।।

भावार्थ – नाना उपायो से सदा पालते रहते भी जहा यह अपना देह

साथ नही जा सकता तव बाहरी पदार्थ किस तरह हमारे हो सकते हैं? ऐसा जानकर किसी भी पर पदार्थ मोह करना उचित नही है।

श्री पद्मनदि मुनि एकत्वसप्तति मे कहते है -

१९. नमस्यञ्च तदेवैकं तदेवैकञ्च मंगलम् ।
उत्तमञ्च तदेवैकं तदेव शरणं सताम् ॥४०॥

भावार्थ — वही चैतन्यस्वरूप आत्मा नमस्कार करने योग्य हैं, वही एक मगल है, वही एक उत्तम पदार्थ है, सज्जनो के लिए वही एक शरण का स्थान है।

श्री शुभचन्द्र आचार्य ज्ञानार्णव में कहते है -

२०. एकः स्वर्गी भवति विबुधः स्त्रीमुखाम्भोजभृङ्गः
एक. श्वाभ्रं पिबति कलिलं छिद्यमानः कृपाणैः ।
एकः क्रोधाद्यनलकलितः कर्म बध्नाति विद्वान,
एक सर्वावरणविगमे ज्ञानराज्यं भुनक्ति ॥११-४॥

भावार्थ - यह जीव अकेला ही स्वर्ग मे जाकर देव होता है और स्त्री के मुख कमल मे भ्रमरवत् आसक्त हो जाता है, वह अकेला ही नर्क में जाकर तलवारो से छिन्न भिन्न किया हुआ नरक के खारे जलको पीता है व अकेला ही क्रोधादि की अग्नि मे जलता हुआ कर्मों को बाधता है तथा अकेला ही आप विवेकी होकर जब सब कर्मों के आवरण को दूर कर देता है तब मोक्ष होकर ज्ञान राज्य को भोगता है।

इसी को तारण स्वामी क्या कहते हैं —

२१. भावेन भाव शुद्धं परमान स्वात्म चिंतने ।
जिन उत्तं उदय सार्थं त्रिभगीदल पडित । ५०॥

भावार्थ — भावना करने मे भाव की शुद्धि होती है। उससे स्वात्मानुभव प्रमाण श्रुत ज्ञान होता है। यही जिनेन्द्र कथित परमार्थ तत्वका प्रकाश है। भावना, शुद्धभाव व प्रमाण रूप स्वात्मानुभव से कर्मो का क्षय होता है।

२२. चेतनं चेतना रूपं उत्पाद्यो सास्वत ध्रुवं ।
जिन उक्तं ज्ञान संजुत्तं त्रिभगी [illegible] ं

भावार्थ - चैतन्य स्वभाव मे मगन [illegible] है । जिससे केवल ज्ञान का प्रकाश होकर अरहन्त पद प्राप्त होता है फिर उससे अविनाशी निश्चल शुद्ध सिद्ध पद होता है ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। ये तीन भाव सर्व कर्म समूह के नाशक हैं ।

२३ समयं दर्शनं ज्ञानं चरनं शुद्ध भावना ।
सार्थ सुद्ध चिन्द्रूपं तस्य समय सार्थ ध्रुवं ।।६३।।

भावार्थ – समय जो आत्म पदार्थ है वह दर्शन ज्ञान रूप है उसी दर्शन ज्ञानमई आत्मामे चलना व उसका अनुभव करना यही शुद्ध भावना है शुद्ध चैतन्य रूप आत्मा ही परम पदार्थ है उसी आत्मा को समय कह हैं प्रयोजन भूत पदार्थ कहते है उसी को अविनाशी निश्चल पदा कहते है ।

त्रिभगी सार मे–

२४. मति श्रुतस्य सम्पूर्णं, ज्ञान पंच मयं ध्रुवं ।
पंडितोसोऽपि जानाते, ज्ञान शास्त्र संपूज्यते ।।५।।

भावार्थ – जो मतिज्ञान व श्रुतज्ञान को पूर्णरूप मे जानता है । उसका ज्ञान सदा पाँच ज्ञानरूप है । वही पडित है वही ज्ञान और शास्त्र द्वा पूज्यनीय है ।

२५. सम्यक्त्वस्य जलं शुद्धं, सम्पूर्णं सर पूरितं ।
स्नानं पिवति गण धरणं, ज्ञानं सरन तं ध्रुवं ।।११।।

भावार्थ – सम्यग्दर्शन रूपी जल, ज्ञान रूपी सरोवर मे भरा हुआ है गणधर उसी शुद्ध तल में नहाते है । सम्यग्ज्ञान ही अविनासी अ अनन्त सरोवर है ।

२६. शुद्धात्मा चेतना नित्यं, शुद्ध दृष्टि समं ध्रुवं ।
शुद्ध भाव स्थिरी भूत्वा, ज्ञानं स्नान पंडिता ।।१२।।

भावार्थ – नित्य शुद्ध, सम और स्थिर शुद्धात्मा का चिंतवन कर और इसी शुद्ध भाव मे स्थिर होना ही पडितजनो का स्नान है ।

२७. दृष्टितं शुद्ध दृष्टि च मिथ्या दृष्टि च तिक्तयं ।
असत्यं अनृत्यं न दृष्टन्ते, अचेत दृष्ट न दीयते ।।१७।।

भावार्थ – जिन्होने शुद्धात्मा का अवलोकन किया है उनने मिथ्या, असत्य, अस्थिर रहने वाली अचेतन योन पर्याय दृष्टि को छोड दिया है ।

२८. संघस्य चत्रु सघस्य, भावना शुद्धात्मन ।
समवशरणस्य शुद्धस्य, जिनोक्तं सार्धं ध्रुव ।।२९।।

भावार्थ – समवशरण के बारह कोण के मध्य चार सघ मे विराजमान अर्हत भगवान ने असख्यात जीवो को यही उपदेश दिया था कि शुद्ध-आत्मा की भावना भावो ।

(पूजापाठ मे)

२९. शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्व, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं ।
रत्नत्रयंऽलकृत शस्य रूपं, तत्वार्थ सार्द्धं वहु भक्ति युक्तं ।।१५।।

भावार्थ – शुद्ध आत्म तत्व का जो प्रकाश है सो सकल्प विकल्प से रहित है । रत्नत्रय से अलकृत है । चन्द्रमा वत निर्मल और शीतल है । तत्वो की श्रद्धान सहित भक्ति युक्त है ।

३०. जे धर्म लीना गुण चेत नेत्वं, ते दुख हीना जिनशुद्ध दृष्टि ।
सं प्रोषि तत्वं सोई ज्ञान रूपं, व्राजन्ति मोक्षं क्षणयेक मेत्वं ।।१६।।

भावार्थ – जो आत्मा के चेतन धर्म मे लीन हैं वे ही शुद्ध सम्यग्दृष्टि दुखो मे छूटते है । वे ही ज्ञानमई तत्व का श्रद्धान करते हुये क्षण मात्र मे मोक्ष मे चले जाते है ।

३१. श्रेणीय पृच्छन्ति श्री वीरनाथ, माला श्रियं मांगत नेह चक्रं ।
धर्णेन्द्र, इन्द्रं, गंधर्व, जक्षं, नरनाह चक्र विद्या धरेत्वं ।।१९।।

भावार्थः– राजा श्रेणक महावीर स्वामी से पूछते है कि हे भगवन यह गुण माला धरणेन्द्र इन्द्र, गधर्व, यक्ष, मनुष्य, राजा, चक्रवर्ति, व विद्याधर प्रेम से चाहते हैं ।

कर्म ममत [illegible], [illegible] और शरीर आदि पर-
मात्मा को पूर्ण मानता है।

४२ देवो परमेट्ठी मइओ लोका लोक [illegible]।
परमप्पा ज्ञान मइओ त [illegible] देह म[illegible] ॥३२८॥

भावार्थ – [illegible] है। जिसने लोका-लोक को देख लिया है। जो आनन्द है, परमात्मा है। [illegible] देह के मध्य भी वही आत्मा है।

(श्रावकाचार से)

४३. गुरुवं च गुण उवएसं ज्ञान सहावेन अएसान शुद्धं।
गुरुव गगन स्वरूव ज्यों सूर तिमिर नासन सहसा ॥१७॥

भावार्थ – सुगुरु गुणो का ही उपदेश करते है। ज्ञान स्वभाव के शुद्ध तत्व का उपदेश देते है। गुरु आकाश वत निर्मल है जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नाश हो जाता है वैसे ही गुरु के उपदेश से मिथ्यात नाश हो जाता है।

४४ नाना प्रकार दृष्टि ज्ञान सहावेन दृष्ट परमेट्ठी।
लिंग च जिन वरिद शुद्धं च कर्म विलयति ॥५४॥

भावार्थ – नाना प्रकार की दृष्टि रखते हुए ज्ञान स्वभाव मे रमन करने वाले परमेष्ठी है उनका भेष तीर्थंकर का भेष है, अतरग भाव शुद्ध होता है। भावो की शुद्धता ही कर्मो के क्षय का कारण है।

४५. देवंच परम देव गुरुवच परम गुरु मं दिट्ठं।
धंर्म्मच परम धम्म जिनच परम जिनं निम्मलं विमल ॥७४॥

भावार्थ – परम देव को देव, परम गुरु को गुरु, परम धर्म को धर्म, वीतराग कर्ममल रहित जिनको परम जिन कहा है।

(ज्ञान समुच्चय सार)

४६ वाहिजर दोष रहियो आहार निहार विवज्जिओ शुद्धो।
ज्ञान आहार सद्धुत्तो ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा ॥६४८॥

भावार्थ – अर्हन्त भगवान के वाहिर जरादिक दोष नही हे आहार व विहार से रहित है। ज्ञानरूपी आहार के करने वाले ज्ञान द्वारा ज्ञान का अनुभव कर रहे है। उनका परमात्मा है।

४७. अप्पा पर पिच्छन्तो संसयरूवेन भावना जुत्तो ।
अन्तराल वृत्ती ओ न भुवनि न सिहरि वं संतो ।।६६६।।

भावार्थ – आत्मा व पुद्गल को जानता हुआ जो ससय रहित भावना मे युक्त होता है। वह सम्यक्त से गिर मिथ्यात मे आता हुआ अतराल वृत्ति है, न तो वह भुवन है न शिपर है, बीच में वही सासादन गुन स्थान है।

४८. सयोगकेवलिनो आहार विहार विवर्जियो शुद्धो ।
केवल ज्ञान उवन्नो अरहन्तो केवली शुद्धो ।।७००।।

भावार्थ – सयोगी केवली केवली आहार विहार दोनो से रहित शुद्ध वीतरागी होते हैं जिनको केवल ज्ञान हो गया है वे ही शुद्धोपयोगी अहन्त केवली हैं।

४९. दव्वं दव्व सहावं जीव दव्व तिलोय सं शुद्धं ।
छह गुण निवास शुद्धं दोगुन अनाई एक संजुत्त ।।८०६।।

भावार्थ – द्रव्य का द्रवण या परिणमन स्वभाव है। जीव द्रव्य तिनमें एक छह गुणो का (अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु लघुत्व, चेतनत्व, अमूर्तत्व) रखने वाला शुद्ध पदार्थ है, इसम दो गुण विशेष रूप हैं चेतनत्व अमूर्तत्व। सग्रह नय से जीव में एक गुण है। जीव अनादि है। स्थावर जीव मे भी ६ सामान्य गुण हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु लघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, दो विशेष गुण चेतनत्व, अमूर्तनत्व।

५०. आरति अप्प सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं भाव ।
आरति ज्ञान अव यास, ज्ञान सहावेन निव्वुएजंती ।।८३७।।

भावार्थ – आत्मा के स्वभाव मे (आ) सब ओर से (रति) प्रेम करना आत्मा को परमात्मा रूप निर्मल भावों से अनुभवना, आत्म ज्ञान के भीतर भले प्रकार लीन हो जाना इस ज्ञान स्वभावी आत्म ध्यान के द्वारा भव्य जीव निर्वाण पाप्त करता है।

(उपदेश शुद्धसार से)

जैसे एक मकान में [illegible] होकर पड़ी हो, [illegible] आदि छहों से देखने को [illegible] तो [illegible] नहीं देख सकेगा। जब उनको [illegible] करेगा और भीतर देखेगा तो अपने आत्मा का दर्शन हो जायेगा।

जिसका हम ध्यान करना है [illegible] है। [illegible] जब हटेगा तब आत्मानुभव हो जायेगा।

सच्चा ज्ञान व वैराग्य ही – वैराग्य का साधक है।

अपनी आत्मा का ज्ञान निश्चय व्यवहार दो प्रकार से करना चाहिये। उसी ज्ञान को नय संज्ञा से जैनागम में बताया है।

(१) निश्चयनय:– जिस दृष्टि से पदार्थ का मूल शुद्ध स्वभाव देखने में आवे उसे निश्चयनय कहते है।

(२) व्यवहारनय:– जिस दृष्टि से पदार्थ का अशुद्ध स्वभाव देखने में आवे उसे व्यवहारनय कहते है।

जैसे हमारे सामने एक मैला कपडा आवे तो दोनो नय से जानने पर ही सफा करने का उपाय कर सकोगे।

निश्चयनय से कपडा सफेद रुई का बना स्वच्छ है। व्यवहारनय से कपडा मैला है कारण मैलका सयोग है, कपडे की स्वच्छता को मैल ने ढक दिया है पर कपडे का स्वभाव मैल नही है।

इसी प्रकार यह आत्मा निश्चयनय से निराला, ज्ञाता दृष्टा अमूर्तीक, निराकार, वीतराग, परमानन्दमय है। न आठो कर्म है, न रागद्वेषादि भाव कर्म है, न शरीरादि नो कर्म है, न मन वचन कायादि का सयोग है, यह आत्म तत्व का निज स्वभाव नही है।

व्यवहारनय से कर्म वधसहित, पाप पुण्य का कर्त्ता, सुख दुख का भोक्ता, क्रोधादि रूप परणयता, इन्द्रिय व मन से थोडा वहुत जानता है और वहुत सी वातो मे अज्ञानी है।

वर्तमान पुद्गल से अशुद्ध ससारिक अवस्था हो रही है यह वात व्यवहार मे सत्यार्थ है। दोनो वाते अपनी अपनी नय से सत्यार्थ है।

आत्मा का स्वभाव मे रहना ही आत्मा की सुन्दरता है। इमे किसी बात के जानने देखने की चिन्ता न हो। कोई क्रोध, मान माया, लोभादि का क्लेश न हो; तृष्णा न हो, दुख न हो, विकार न हो, कर्मो का सयोग तथा शरीर का सम्बन्ध इसके गुणो का घातक इसकी सुन्दरता का बिगाडने वाला है। अतएव मुझे किसी परमाणु मात्र से प्रयोजन नही न पुण्य, न पाप न इन्द्रादि पदसे न चक्रवर्त्तादि पद या विद्याधर पद मे ऐसा सच्चा वैराग्य हो कि ससार मात्र विरस दीखे। ऐसा सच्चा भाव रत्नत्रयधर्म, सहज सुख का साधन है।

यदि कोई मैले कपडे के स्वच्छ करने को ससाला और कपडे पर ध्यान न रखे और रगड न लगावे तब तक कपडे का मैल न कटेगा न स्वच्छ होगा तैसे हो सच्चे वैराग्य सहित होकर, सच्चे व्यवहार चारित्र का ससाला लेकर आत्मा को शुद्ध करना चाहे, जप, तप, व्रत करे, सयम पाले और उपयोग न लगावे, आत्मध्यान न करे, आत्मानुभव न करे तो "कदापि शुद्ध न होगा"

"आत्मा के शुद्ध करने का एकमात्र उपाय आत्म ध्यान है।"

आत्मा के कर्म मैल का सयोग राग द्वेष मोह भावो से होता है तब मैल का काटना वीतराग भावो से होता है। "सच्चे ज्ञान व सच्चे वैराग्य के शुद्ध आलोक स्वभाव में एकतान (सलग्न) हुआ जाता है।" तब वीतरागता का अग बढना है यही ध्यान की अग्नि है जो कर्म इधन को जलाती है। आत्मध्यान मे जितना आत्मबल बढेगा, उतना ही धैर्य बढ जावेगा, जो उपसर्ग आने पर मेरुवत् निश्चल कर देवेगा।

मिश्री का कण जितने समय जिव्हा पर रहेगा उतने समय तक मिष्ट-स्वाद देवेगा। वैसे आत्मध्यान भी एक सेकड के १०० वे भाग भी हो जावे तो सहज सुख अनुभव म आवेगा।

बडे बडे वीर वो शक्तिशाली वैराग्यवान मनुष्य भी आत्म-ध्यान २ घड़ी (४८ मिनट) के भीतर ही भीतर कर लेते हैं।

आत्मध्यान पैदा करने की माता आत्मा के शुद्ध स्वरूप की भावना है जो बहुत देर तक भी की जा सकती है। ध्यान के समय मन

वचन, काय तीनों के व्यापार बंद करते हैं। जैसे किसी सुन्दर रूप के देखने में एकाग्रता होती है ऐसा ही ध्यान में एकाग्रता पैदा हो जाता है। उस समय ध्याता को यह नहीं ज्ञान होता है कि मैं ध्यान करता हूं या आत्मा को ध्याता हूं। यही आत्मा अनुभव कराती है। वहां एक आत्मा का ही निरूपण या विचार रहता है। जैसे दूध को बिलोते बिलोते मक्खन निकलता है वैसे आत्मा की भावना करते करते आत्म-ध्यान या आत्मानुभव हो जाता है। जब आत्मानुभव हो जाता है तब भावना बन्द हो जाती है।

ध्यान करनेवाले में आत्मा का श्रद्धान निश्चय तथा व्यवहार नय से होना चाहिये। उसके मन में सच्चा ज्ञान, वैराग्य होना चाहिए ऐसा ध्याता आत्म रसिक होता है।

ध्यान करनेवाले को १ समय, २ स्थान, ३ मन, ४. वचन, ५ काय, ६ आसन बैठने का, ७ आसन लगाने का, ८ विषय की शुद्धता का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

इनका खुलासा इस प्रकार है –

(१) समय — ध्यान करने का समय अत्यन्त प्रातःकाल सूर्योदय के पहले से सूर्यास्त के पश्चात ६ घडी, ४ घडी, २ घडी उत्तम, मध्यम, जघन्य भेद से तीन रूप हैं। जो सवेरे, मध्यान्ह, सांझ मे श्रेष्ठ समय प्रात काल का है।

(२) स्थान – पवित्र शांत क्षोभरहित होना चाहिये, जहां स्त्री, बच्चे, पुरुषो की बात सुनाई न पडे, पवन अनुकूल हो. शीत व उष्णा अधिक अधिक न हो, पर्वत का शिखर, गुफा, वन, उपवन, नदी या समुद्रतट, नगर बाहर, उद्यान, नसिया, जिन मंदिर का एकान्त स्थान, उपाश्रय, निराकुल स्थान होना चाहिये।

(३) मनशुद्धि – जितनी देर ध्यान करना हो उतनी देर सब कामो से निश्चिन्त हो जावे, भय के कारणो को त्याग, आकुलता रहित, शोक, विवाद को दूर कर, मन का ममत्व छोडकर ध्यान करे।

(४) वचन शुद्धि – ध्यान में जितनी देर लगानी हो उतनी देर मौन रहे। सहकारी मन्त्रों को पढे या पाठ पढें परन्तु किसीसे वात न करे।

(५) कायशुद्धि.- शरीर मे भूख न हो, भरा भी न हो, दर्द न हो, मल-मूत्र की वाधा न हो, भीतर से स्वस्थ्य व वाहर मे पवित्र व निरोग हो, जितना कम वस्त्र हो उतना हो ठीक है, शरीर के कारण कोई वाधा न आवे ऐसे कारण मिलावे और ध्यान करे।

(६) वैठने का आसन:- ध्यान के लिए कोई घास का आसन या चटाई, पाटा या शिला नियत कर ले, यदि न मिले तो शुद्ध पवित्र भूमि पर भी ध्यान किया जा सकता है।

(७) आसन लगाने का – ध्यान करते हुए अर्ध पद्मासन, कायोत्सर्गासन या पद्मासन है। आसन मे शरीर थिर रहता है। थिर रहने से श्वासोच्छ्वास सम चलता है मन निश्चल रहता है। दोनो पग जांघों पर, दोनो हथेली एक दूसरे पर रक्खे, मस्तक सीधा, छाती सीधी कर ऐसा वैठे कि दृष्टि नासापर मालूम होवे यही पद्मासन है। एक पग मोडे दूजा पग ऊपर राखे अर्ध पद्मासन है। खडे होकर दोनो पांव के अंगूठे में चार अंगुल का अंतर रखे। यह कायोत्सर्गासन है।

(८) विपद – १. पदस्थ– अपने शरीर के भीतर व्याप्त आत्मा को शुद्ध निर्मल जल की तरह भरा विचारे और मन को उसी जल समान, आत्मा मे डुवाए रक्खे, जव हटे तव अर्हं, सोहं, सिद्ध अर्हन्त सिद्ध, ॐ आदि मंत्र पढने लगे फिर उसी में रक्खे इसी तरह वार वार करे। कभी कभी आत्मा का स्वभाव विचार ले कि यह आत्मा परम शुद्ध ज्ञानानदमयी है।

२. अपने आत्मा को शरीर प्रमाण आकारधारी, स्फटिक मणि की मूर्ति समान विचारे और उसी में लय हो जावे। जव मन हटे तव उपरोक्त मंत्र पढे यह दूसरी रीति है।

३. पिण्डस्थ– इसकी पाच धारणाओं को क्रमसे अभ्यास करके आत्म-ध्यान पर पहुचावे यह तीसरी रीति है।

धारणा का विवरण:-

(१) [illegible] है ।

(२) [illegible] धारणा – [illegible] भीतर १६ पत्तो पर [illegible] [illegible] हुए है । [illegible] अ अ वर्ण [illegible] आठ पत्तो का कमल पर ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म स्थापित करे । नाभि कमल म जो "हैं" [illegible] धुआं निकला फिर अग्नि का फुलिगा उठा, फिर [illegible] कमल को जलाने लगी वह शिखामस्तक पर आ गई [illegible] और [illegible] त्रिकोणाकार बन गई । तीनो रेखाओ को र र र से [illegible] कोनो पर [illegible] एक साथिया अग्निमय विचारे तब यह ध्यान रहे कि [illegible] का अग्नि मण्डल धूम-रहित शरीर को जला रहा है जब राख हो गई तब अग्नि शात हो गई । ये कार्य आग्नेय धारणा का है ।

(३) मारुती धारणा तीव्र पवन चलकर मेघो को उडा ले गई । यही पवन आत्मा पर पडी रज को उडा रही है । यही पवन धारणा है ।

(४) वारुणी धारणाः– वडी काली काली मेघो की घटा आई और मोती के समान बून्दो मे जल गिरने लगा । अर्ध चन्द्राकार जल का मण्डल आकाश मे वन गया और आत्मा पर जल पडने लगा यही आत्मरज को धो रहा है । यही वारुणी धारणा है ।

(५) तत्वरूपी धारणा – मेरा आत्मा सर्व कर्मो से रहित, शरीररहित, पुरुषाकार सिद्ध समान है । यही तत्वरूपी धारणा है ।
चौथी विधि मे १– पदो के द्वारा पदस्थ ध्यान करे हैं मत्र राज को नासाग्र या भोह के मध्य रख चित्त को रोक, शात मन हो, मत्र कहे । अर्हंत सिद्ध का स्वरुप विचारे ।

२– ॐ प्रणव मत्र को मध्य मे रख १६ स्वर व ३३ व्यजन को विचारे वो ध्यान के ॐ का आचरण करे। पच परमेष्टी के गुण विचारे।

३– मध्य कमल मे णमो अरहताण लिखे, ४ दिशाओ में णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाण, णमो लोय सव्व साहूण लिखे, विदिशाओ में सम्यग्दर्शनाय नम, सम्यज्ञानाय नम, सम्यग्चारित्राय नम, सम्यक्तयाय नम लिख मत्र को पढ मन को रोके अर्हंतादि का स्वरूप विचार ध्यान करे।

४– आठो पाखड़ी पर "ॐ णमो अरहताण" लिख ध्यान करे।

५– सोलह स्वरो के मध्य ह्रीं मत्र विराजमान कर ध्यान करे।

रूपस्थ– समवशरण में विराजित तीर्थंकर भगवान को वार सभाओ के मध्य बैठा, इन्द्रादि को से पूजित ध्यावे, उनके ध्यानमय स्वरूप पर दृष्टि लगावे।

रूपातीत– इसमे एकदम मे सिद्ध भगवान को शरीर रहित पुरुपाकार शुद्ध स्वरूप विचार करके अपने आपको उनके स्वरूप मे लीन करे।

जव ध्यान मे मन न लगे तव आत्ममनन करने को आध्यात्मिक ग्रथ पढे या सुने, आध्यात्मिक भजन गावे, वैराग्यमय स्तुति पढे स्तोत्र पढ यही अद्वैत भाव सहजसुख का साधन है। इस अनुभव की प्राप्ति का यत्न भी सहजसुख का साधन है।

"जीवन को सफल वनाने को सहजसुख का साधन मुख्य कर्तव्य है।"

जैन मंत्र पद –

१ एकाक्षरी– ॐ
२ दो अक्षरी– अर्हं, सिद्ध
३. पांच अक्षरी– अ सि आ उ सा
४. सात अक्षरी – णमो अ र हं ता णं
५. इक्कीस अक्षरी– अर्हन सिद्ध आइरिया, उवज्झाया सर्व साधुभ्य.
६ सोलह अक्षरी– अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु।

[illegible] –

१. वद णियम णि धरंता सीलाणि [illegible] कुव्वंता ।
परमट्ठ बाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी ।।१५[illegible]।।

भावार्थ– व्रत नियम को धारे, शील नियम को पाले, तप को करे, आत्मानुभव से शून्य है । [illegible] में लीन है वह निश्चयचारित्र से रहित अज्ञानी ।

([illegible]-समयसार)

सम्मत्त णाण जुत्तं चारित्तं राग दोष परिहीणं
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाण लद्ध बुद्धिणं ।।१०६।

भावार्थ– आत्म ज्ञानी भव्य जीवों के राग द्वेष से [illegible] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही मोक्ष मार्ग है ।

(कुन्दकुन्दाचार्य-पंचास्तिकाय)

३. जीवोवव गद मोहो उवलद्धो तच्च मप्पणो सम्म ।
जहदि जदि राग दोसे सो अप्पाण लहदि सुद्धं ।।८-।।

भावार्थ– मोहरहित जीव अपने आत्मा के स्वभाव को भले प्रकार जान कर जब राग द्वेष त्यागता है तब वह शुद्ध आत्मा को पा लेता है । शुद्ध आत्मा में ही रमण करता है ।

(कुंदकुंदाचार्य–प्रवचनसार)

४. अप्पा अप्पमि रेआ रायादि सु सयल दोस रिचत्तो ।
संसार तरण हेदु धम्मोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठ ।।८५।।

भावार्थ– जो आत्मा रागद्वेषादि सर्व दोषों को छोडकर अपने आत्मा के स्वभाव में लवलीन होता है, वही ससार सागर से तिरने का उपाय धर्मजिनेन्द्रो ने कहा है ।

(कुन्दकुन्दाचार्य–भावपाहुड)

५. अट्ठ विह कम्म मूलं खविद कसाया खमादि जुत्ते हि ।
उद्धद मूलो व दुमोण जाइ दव्व पुणो अत्थि ।।११६।।

भावार्थ– आठ प्रकार के कर्मों का मूल कारण कषाय है । क्षमादि भावों से नष्ट करो जैसे वृक्ष की जड़ काटने पर फि अंकुर उत्पन्न नही होता ।

(श्रीवट्टकेर स्वामी–मूलाचार में)

६. भिक्खंचर वस रण्णे थोव जेमेहि या बहू जंप ।
दुखनह जिण णिद्दा मेंत्ति भानेहि सुद्दु वे रग्गं ।।४।।

भावार्थ स्वामी साधु उपदेश देते हैं कि भिक्षा से भोजन कर, एकान्त वन में थोड़ा जीम, बहुत बात मत कर, दुखों को सह, निद्रा को जीत मैत्री भावना को वैराग्य का चिंतवन कर ।

(श्री वट्टकेर स्वामी मूलाचार समयसार में)

७ खमामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु में ।
मित्ति में सव्व भूदे सु वैरं मज्झण केणवि ।।४२।।

भावार्थ- मैं सब जीवों पर क्षमा करता हू, सर्व जीव मुझ पर क्षमा करो, मेरी मैत्री सब जीव मात्र से हो, मेरा वैरभाव किसी से न हो ।

(श्री वट्टकेर स्वामी–वृहत् प्रत्याख्यान में)

८ जिदि रागो जिद दोसो जिंदिदिओ जिदभओ जिदकसाओ ।
रदि अरदि मोह महणो झाणो वग ओ सदा होई ।।१७९८।।

भावार्थ– जो साधु राग द्वेष को जीतनेवाला इंद्रियों को वश में करता है । भयरहित कषायों को जीतनेवाला है । रति अरति मोह का मंथन करनेवाला है । वही सदा ध्यान में उपयुक्त हो सकता है ।

(श्री शिवकोटि आचार्य–भगवती आराधना)

९. यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्व मुत्तमम् ।
तथा तथा न रोचते विषयाः सुलभा अपि. ।।३७।।

भावार्थ– जैसे जैसे स्वात्मानुभव उत्तम आत्मा का तत्व भले प्रकार आता जाता है । वैसे वैसे सुगम भी इंद्रियों के विषय नहीं रुचते है ।

(श्री पूज्यपादाचार्य–इष्टोपदेश में)

१० यम नियम [illegible] शान्त बाह्या [illegible] ।
परिणमित समाधि, सर्व [illegible] कम्पी ॥
विहित हित मिताशी क्लेश जाल समूलं ।
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्म सार ॥२२५॥

भावार्थ- जो [illegible] यम नियम [illegible] हैं, [illegible] जाते हैं, परमें ममता [illegible] है, [illegible] जो [illegible] दयालु हैं शास्त्रोक्त [illegible] मर्यादित [illegible] है, निद्रा को जिन्होंने जीत लिया है, आत्म [illegible] जिन्होंने निश्चय कर लिया है [illegible] ही ध्यान [illegible] में सर्व दुःख [illegible] को [illegible] देते हैं ।

(श्री गुणभद्राचार्य-आत्मानुशासन)

११ जं अवि यप्पं तच्च स सार मोक्ख कारण त च ।
त णाऊण विसुद्ध झायह होऊण णिग्गंथो ॥९॥

भावार्थ- जो निर्विकल्प आत्मसार है वही तत्व है, वही मोक्षका कारण है । उसी को जानकर निर्ग्रन्थ होकर उसी निर्मल तत्व का ध्यानकर ।

(श्री देवसेनाचार्य-तत्वसार)

१२. जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु जिण झायहु सुमणेण ।
सो झाहं तह परमपउ लब्भई इक्क खणेण ॥१९॥

भावार्थ- श्री जिन परमात्मा का स्मरण करो, उनका ही चिंतवन करो उन्ही का शुद्ध मन होकर ध्यान करो, उसी के ध्यान करने से एक क्षण मे परम पद जो मोक्ष है उसका लाभ होगा ।

(श्री योगेन्द्राचार्य योगसार)

१३ संग त्यागः कषायाणां निग्रहो व्रत धारणं ।
मनोऽक्षाणं जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मेन ।७५ ।

भावार्थ – कषायों का निरोध, व्रत धारणा मन, इंद्रियों का विजय य चार ध्यान उत्पत्ति के कारण है ।

(श्री नागसेनाचार्य–तत्वानुसासन)

१४. पश्यति स्व स्वरूपं यो जानाति च चर त्यपि ।
दर्शन ज्ञान चारित्र त्रयमात्मैव स स्मृत । ८॥

भावार्थ.- जो अपने आत्मा के स्वभाव का श्रद्धान करता, जानता व अनुभव करता है वही दर्शनज्ञान चारित्ररूप आत्मा ही कहा है ।

(श्री अमृतचन्द्राचार्य-तत्वार्थसार)

१५ अपि कथमपि मृत्वा तत्व कौतूहली स-
म्रभुव भवमूर्ते पार्श्व वर्ती मुहुर्त्तम् ।
पृथ गथ विलसंतं स्वं समा लोक्य येन-
त्यजस्वि क्षगिति मूर्च्छा साक येकत्व मोहं ।।२३-१।।

भावार्थ.- अरे भाई किसी तरह भी मर करके आत्मीक तत्व का प्रेमी हो और दो घडी के लिए शरीरादि सर्व मूर्तीक पदार्थो का निकटवर्ती पड़ोसी वन जाय, उनको भिन्न जान आत्म अनुभव कर तो तू अपने को प्रकाशमान देखता हुआ मूर्तीक पदार्थ के साथ एकता का मोह शीघ्र त्याग देना ।

(अमृतचद्राचार्य-तत्वार्थसार)

१६. न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्य स्वस्थ्य सदा त्वं भवभद्रमुक्तं।२४।

भावार्थ - मेरे आत्मा से जितने पदार्थ हैं वे मेरे कोई नही है और न मैं कभी उनका हू । ऐसा निश्चय कर सब बाहरी पदार्थो मे मोह छोड कर हे भव्य तू सदा अपने आत्मा मे ही लीन हो इसी से मुक्ति लाभ होगा ।

(श्री अमितगति आचार्य-सामयिक पाठ)

१७ येषा कानन मालय शशधरो दीपस्तमच्छेद कः ।
भैक्ष्यं भोजन मुत्तमं वसुमति शय्या दिशस्त्वम्बरम् ।।
संतोषामृत पान तुष्ट वपुषो निर्धय कर्माणि ते ।
धन्यायाति निवास समस्तं विपदं दीनं दुरापं परं ।।२४।।

भावार्थ - जिन महात्माओ का घर वन है, दीपक चन्द्रमा है, भिक्षा ही उत्तम भोजन है, शय्या पृथ्वी है, दश दिशा वस्त्र है, संतोषामृत मे जिनका शरीर पुष्ट है वे ही धन्य है । उन्होने कर्मो को क्षय करके मुख रहित जो मोक्ष स्थान ताको पाया है जो और दीनों [illegible] नही होता है ।

(श्री अमि [illegible] चार्य

१८. साम्यं निश्शेष शास्त्राणां सार माहुर्विपश्चित: ।
साम्यं कर्म महादारु दाहे दावा न लायते ॥५८॥

भावार्थ – समताभाव सब शास्त्रों का सार है ऐसा विद्वानों ने कहा है। समताभाव ही कर्मरूपी वृक्षको जलाने को दावानल के समान है। यह समताभाव आत्मध्यान से ही जागृत होता है।

(श्री पद्मनन्दिमुनि-[illegible] से)

१९. आर्त रौद्र परि त्यागादि धर्म शुक्लसमाश्रयात् ।
जीव: प्राप्नोति निर्वाण भगन्त सुखमच्युत ॥२६॥

भावार्थ – आर्त रौद्र ध्यान को त्याग कर और धर्म शुक्ल ध्यान का आश्रय लेता है। वही जीव अनन्त सुखमई अविनाशी सुख निर्वाण को प्राप्त करता है।

(श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चय से)

२०· सौधोत्संगे श्मशाने स्तुति शयन विधौ कर्दमें कुंकु मे वा ।
पल्यंके कंठ काग्रे दृसदि शशि मणौ चर्म चीनांशु केषु ॥
शीर्णा के दिव्य नार्याम सम शम व साद्यस्य चित्त विकल्पै ।
र्नालीढं सोऽय मेक: कतयति कुशल· साम्य लीला विलास ।२९-२४।

भावार्थ – जिन महात्मा का चित्त महल या स्मशान, स्तुतिनिन्दा, कीचड या केसर छिडकने पर, पल्यक शैया या काटो पर, पाषाण या चन्द्रकाति मणि के निकट आने पर, चर्म या चीन के रेशम के वस्त्र दिये जाने पर क्षीण शरीर या सुन्दर स्त्री के देखने पर अपूर्व शातभाव के प्रताप से राग द्वेष विकल्प से स्पर्श नही करता है। वही चतुर मुनि समताभाव के आनन्द का अनुभव करता है।

(श्री शुभचन्द्राचार्य-ज्ञानार्णव में)

२१ यस्य ध्यानं सु निष्कम्पं समत्वंतस्य निश्चलम् ।
नानयो र्विद्धय धिष्ठान मन्योऽन्यस्याद्वि भेदत ॥२-२५॥

भावार्थ – जिसके ध्यान निश्चल है उसका समभाव निश्चल है ये दोनो परस्पर आधार है। ध्यानका आधार समभाव और समभावका आधार ध्यान है।

२२. दारू पट्टे शिला पट्टे भूमौ व शिकतास्थले ।
समाधि सिद्धये धीरो विदध्यात् सु स्थिरासिनम् ।।९-२८।।

भावार्थ – धीर पुरुष ध्यान की सिद्धि को काठ का तख्ता, शिला, भूमि, बालू मे भले प्रकार आसन लगावे ।

२३. नेत्र द्वन्द्वे श्रवण युगले नासिकाग्रे ललाटे ।
वक्रे नाभौ शिरसि हृदयं तालुनि भ्रू युगांते ।।
ध्यान स्थानान्य मल मातेभिः कीर्ति तान्यत्र देहे ।
तेह वे कस्मिन्विगत विषयं चित्तमालम्बनीयम् ।।१३-३०।।

भावार्थ – ध्यान रोकने को १० स्थान आचार्यो ने बताये है । १ नेत्र युगल, २. कर्णयुगल, ३ नासकाग्रभाग, ४ ललाट, ५. मुख, ६ नाभि, ७ मस्तक ८ हृदय, ९ तालु. १० दोनो भौहो के मध्य, इनमे से किसी एक जगह मनको विषयो से रहित करके ठहराना उचित है । कहीपर ॐ व ह्रीं मन्त्र को स्थापित कर ध्यान का अभ्यास किया जा सकता है ।

(श्री शुभचन्द्राचार्य–ज्ञानार्णव)

२४. मेरु कल्प तरुः सु वर्णं म मृतं चिन्ता मणि केवलं ।
साम्य तीर्थं करो यथा सुरगवी चक्री सुरेन्द्रो महान ।।
भू भृद्द भूरुह धातुपेय मणिधी वृ जाप्त गो मान वा ।
मर्त्येष्वेव तथाच चिंतन मिह ध्यानेषु शुद्धात्मन ।।९-२।।

भावार्थ – पर्वतो मे मेरु श्रेष्ठ है, वृक्षो में कल्पवृक्ष, धातुओ मे स्वर्ण, पेय पदार्थो मे अमृत, रत्नो में चिन्तामणि, ज्ञान मे केवलज्ञान, चारित्र म समताभाव, आत्माओ म तोर्थंकर, गायो म कामधेनु, मानवो म चक्रवर्ति, देवो मे इन्द्र उत्तम है । वैसे ही ध्यान मे शुद्ध चिद्रूप का ध्यान सर्वोत्तम है ।

(श्री ज्ञानभूषण भट्टारक–तत्त्वज्ञान तरंगिणी)

२५ धीरज तात क्षमा जननी परमारथ मीत महा रुचि मासी ।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा मति पुत्र वधू समता अति भासी ।।
उद्यमदास विवेक सहोदर बुद्धि कलत्र सुभोदय दासी ।
भाव कुटुम्ब सदा जिनके ढिग यो मुनि को कहिये गृहवासी ।७।

(बनारसीदास–बनारसी विलास मे)

२६ काज विना न करे जिय उद्यम लाज विना रण माहिं न जूझै ।
डील विना न सधै परमारथ शील विना सत सौं न अरूझै ॥
नेम विना न लहै निहचय पद प्रेम विना रस रीति न बूझै ।
ध्यान विना न थमै मन की गति ज्ञान विना शिवपंथ न सूझै ।२३।

(बनारसीदास-नाटक समयसार)

२७. सिद्ध हुवे अब होई जु होईंगे ते सबही अनुभौगुन सेती ।
ता विन एक न जीव लहै शिवघोर करै किरिया वहु केती ॥
ज्यो तुपमाहिं नहीं कन लाभ कियेनित उद्यम की विधि जेती ।
यो लखि आदरिये निजभाव-विभाव विनास कला शुभ एती ६६।

(द्यानतराय-द्यानतविलास मे)

२८. शुद्धात्मा निहारि राग दोष मोह टारि,
क्रोध मान वंक गारि लोभ भाव भातुरे ।
पापपुन्य को विडारि शुद्धभाव को सम्हारि,
मर्म भाव को विसारि पर्म भाव आनुरे ॥
चर्मदृष्टि ताहि जारि शुद्धदृष्टि को पसारि,
देह नेह को निवारि सेत ध्यान ठानरे ।
जागि२ सैन छारि भव्य मोख को विहार,
एक वार के कहैं के हजार वार जानुरे ॥

(द्यानतराय-द्यानतविलास)

२९ पंचन सौं भिन्न रहे कंचन ज्यो काई तजे,
रंचन मलीन होय जाकी गति न्यारी है ।
कंजन के कुल ज्यो स्वभाव कीच छुए नाहिं
वैसे जल माहि पै न उर्धता विसारी है ॥
अंजन के अंश जाके वश में न कहूं दीखे,
शुद्धता स्वभाव सिद्ध रूप सुखकारी है ।
ज्ञान को समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो,
ज्ञान दृष्टि देखो भैया ऐसो ब्रम्हचारी है ॥५५ ।

(भैया भगवतीदास-ब्रम्हविलास)

इसी विषय मे तारण स्वामी क्या कहते हैं :-

३० निश्चय नय जानते शुद्ध तत्व विधीयते ।
ममात्मागुणं शुद्धं नमस्कारं शास्वतं ध्रुव ॥२॥

भावार्थ – जो निश्चयनय को जानते हैं वे शुद्ध आत्मतत्व को पहचानते हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा भी गुणो का समुद्र व शुद्ध है इसने उसको सदाकाल सच्चा नमस्कार है ।

३१. ॐ नमः वन्दते योगी सिद्धं भवति शास्वतं ।
पंडितो सोऽपि जानंते देव पूजा विधीयते । ३ ।

भावार्थ – जो योगी ॐ नम. शब्द के भाव से अविनासी सिद्ध भगवान का अनुभव करते हैं वही पडित है और वही सच्ची देवपूजा है ।

३२. ह्रींकार ज्ञान उत्पन्नं ॐकारं च वन्दते ।
अर्हं सर्वज्ञ उत्कंच-अचक्षु दर्शन दृष्टते ॥४॥

भावार्थ – जो योगी ह्रींकार का ज्ञान उत्पन कर ॐकार जो सिद्ध भगवान का ध्यान करते है, वेही अर्हन्त पदवी को पाकर अचक्षुदर्शन याने मनके द्वारा दर्शनोपयोग मे देखता है ।

३३. मति श्रुतस्य सम्पूर्ण ज्ञानं पंच मयं ।
पंडितो सोऽपि जानंते ज्ञान शास्त्रं सं पूजिते ॥५॥

भावार्थ.– जो मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान को पूर्णपने जानता है और सच्चा आत्मश्रद्धान है । उसका ज्ञान ५ ज्ञान रूप है । वही पंडित है और वही ज्ञान और शास्त्र द्वारा पूजनीय है ।

३४. देवं गुरं श्रुतं वन्दे धर्मं शुद्धं च वन्दते ।
तीर्थं अर्थ लोकच स्नानं च शुद्धं जलं ॥८ ।

भावार्थ:– मैं सच्चे देव गुरु शास्त्र वो धर्म की वन्दना करता हूं । वही तीर्थं जगमें प्रसिद्ध है । इसम ही शातिदायक शुद्ध जल है जिसमे पडितजन स्नान किया करते हैं ।

(विद्यानन्द-पूजापाठ से)

३५ नमामि [illegible]

मालागुन [illegible] ।२।।

भावार्थ – अनन्त चतुष्टय [illegible] भगवान वीरनाथ स्वामी को [illegible] अनन्ते सिद्धो को नमस्कार [illegible] गुणो को कहता है।

३६. काया प्रमाण त ब्रम्ह [illegible] निरंजन चेतन [illegible] ।
भाचे अनेत्व जे ज्ञान रूप [illegible] शुद्ध [illegible] ।३।।

भावार्थ – यह ब्रम्हस्वरूप आत्मा शरीर प्रमाण आकारधारी है। सर्व-कर्मरूपी अजनो से रहित है। [illegible] ज्ञान-स्वरूप है उसको जो योगी ध्याते है [illegible] शुद्ध सम्यक्त के धारी व [illegible] वान है।

३७. शल्यंत्रियं चित्त निरोधनेत्व जिनोक्तवाणी हृद चेतनेत्वं ।
मिथ्यात देवं गुरू धर्म दूर शुद्ध स्वरूप तत्वार्थ सार्धं ।।५।।

भावार्थ '– जिसने अपने मन से मिथ्या, माया, निदान तीन शल्यों को दूर कर दिया है। जिनेन्द्र की वाणी के अनुसार चेतनपना जिनके हृदय मे जागृत हो गया है व मिथ्या देव धर्म गुरू से दूर है। वह तत्वार्थ के ज्ञाता शुद्ध आत्मा है।

३८. ये मुक्त सौख्यं नर कोपि मार्धं सम्यक्त शुद्ध ते नर धरेत्व ।
रागादियो पुण्यपापाय दूर ममात्मा स्वभाव ध्रुव शुद्ध दृष्ट ।।६।।

भावार्थ – जो कोई मोक्ष के सुख का अनुभव करनेवाला है वही शुद्ध सम्यक्त को धारण करने वाला है। वह रागादि पुण्य पाप से दूर है। मेरा आत्मा ही ऐसे स्वभाव वाला है। ऐसा निश्चय मे शुद्ध सम्यक्ता ही जानता है।

३९. सम्यक्त्व शुद्ध हृदय समस्त तस्य गुणमाला गुथितस्य वीर्यं ।
देवाधिदेव गुरू ग्रन्थ मुक्तं धर्मं अहिन्स्या क्षिमोत्तमध्यं ।।८।।

भावार्थः– मेरे हृदय मे शुद्ध सम्यकदर्शन है। उसकी गुणमाला अपनी

शक्ति अनुसार गुंजन करता है । देवों के देव वीतराग भगवान हैं । गुरु परिगृह रहित है । धर्म अहिंस्या रूप है । जिसका कि वीर्य उत्तम क्षमादि १० प्रकार है ।

(विचारमत–मालापाठ से)

४०. जिन वयन सद्दहन कमल श्री कमलभाव उववन ।
आजिक भाव सउत ईर्ज संभाव मुक्ति गमनं च ।।८।

भावार्थ – जिन्होंने प्रथम ही जिनोक्त वचनों का श्रद्धान किया है । फिर आत्मीकलक्ष्मी को प्राप्त करने करने आत्मीक लक्ष्मी के नेता हुए हैं । उसी के स्वरूप में स्वय प्रवेश किया है जो सरल परमाणो सहित है । शांत भाव के द्वारा मुक्ति प्राप्त की है । ऐसा जो परम देव है उसको मैं पूजता हू ।

४१ अन्मोयं ज्ञान सहावं रयनं रयनं सरूव विमल ज्ञानस्य ।
निमलं विमल सहावं ज्ञान अन्मोय सिद्धि सपत्तं ।।३।।

भावार्थ – जो अमूल्य सम्यक्ज्ञान की सहायता से ही निर्मल केवल ज्ञान रूप होकर तीन जगत में रत्नो के रत्न है । अत कर्मो के मलसे रहित होकर जीवों के कर्मों को छुडानेवाले हैं । ऐसे जो परम देवों के देव उत्कृष्ट ज्ञान को पाकर सिद्धपद को प्राप्त हुये है ।

४२. ति अर्थं शुद्ध दृष्ट पंचाथ पंच ज्ञान परमेष्टी ।
पचास्वार सु चरणं सम्यक्त्वं शुद्ध ज्ञान आचरणं ।।१०।।

भावार्थ – शुद्ध रत्नत्रय ही जिनका अर्थ है जो पाच ज्ञानमयी है । जिनका विचार सम्यक्त्व सद्ज्ञानमयी है जिसमें पचाचार का विचार करते हैं । ऐसे सम्यक्त्व भाव जिनके है वे शीघ्र मोक्ष पद पाते है ।

४३ दर्शन ज्ञान सु चरणं, देवं च परम देव शुद्धं च ।
गुरुवंच परम गुरुव, धर्मं च परम धर्म सद्भाव ।।११।।

भावार्थ – जो सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के आचरण करने वाले है वे ही देवो मे परमदेव, गुरुओ म परमगुरु, धर्मो म परमधर्म माने जाते है ।

(विचारमत–समाधीगी पाठ)

४४, एयं अनेय भावं तरंति तारयंति शुद्ध सद्धावं ।
सिद्धं च सर्वं सिद्धं अनुमोयं परिनाम शुद्ध सिद्धं च ।।५२०।।

भावार्थ – एक भाव या अनेक भाव के धारी सिद्ध भगवान, परमयोग के धनी आप तर चुके है और दूसरों को तारण के कारण है । सर्वसिद्ध भगवान अपने आत्मा के मार्ग को सिद्ध कर चुके है । वे आनन्दमय भाव व परम शुद्धभाव के धारी है ।

४५. अट्ठ गुण सजुत्तो अट्ठई पुहमी च धाम सासयं च ।
कम्मं तिविह विमुक्को, विमल सहावेन सिद्धि संपत्तो । ५२६।।

भावार्थ – सिद्ध भगवान आठ गुण सहित है । आठवी पृथ्वी के ऊपर उनका निवास सदाकाल रहता है । तीनो प्रकार कर्मो से रहित है । वे शुद्ध स्वभाव से सिद्धि को पा चुके है ।

४६. कमल स्वभाव संयुत्तं खिपिओ कम्मान तिविह जोए न ।
गगनं तुनन्त दिट्ठं गगनन्त दिट्ठ कम्म विलयंति ।।५३०।।

भावार्थ – जब कमल स्वभाव परम आनदमय आत्मा का परिणाम होता है तब उस शुद्ध प्रफुल्लित आनदमय आत्मा के भाव के प्रताप से मन वचन कायकी गुप्तिसे कर्मो का क्षय हो जाता है तब अनत आकाश देखने मे आ जाता है । इस अनन्त केवलज्ञान के प्रकाश से सर्व कर्म विला जाते है ।

४७ ज्ञानारूढ सो समयं नाना प्रकार नन्त परिनामं ।
टूटंति मिच्छ भाव टंकारं मुक्ति कम्म खिपनं च ।।५३२।।

भावार्थ – जब अपना आत्मा ध्यानारूढ होता है तब मिथ्या भाव और नानाप्रकार अनन्त विभाव परिणाम टूट जाते है और मुक्ति पाने की तीव्र टकार या ध्वनि होती है । सर्व कर्म भाग जाते है ।

(उपदेश सुद्धसार से)

४८. आत्मा त्रिविध प्रोक्तंच पर अंतर वहिरप्पयं ।
आत्मानं शुद्धात्मानं परमात्मा परमं पदं ।।१७३।।

भावार्थ – आत्मा के तीन प्रकार भेद किये हैं परमात्मा, अन्तरात्मा, और वहिरात्मा । जो शरीरादि को आत्मा जानता है वह वहिरात्मा

मिथ्यादृष्टि है । जो शुद्ध आत्मा को आत्मा जानता है वह अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि है । जो उत्कृष्ट पद मे रहनेवाला है वह परमात्मा परमेष्टी है ।

४९ प्रथमं उपदेश सम्यक्तं शुद्ध धर्म सदा बुधं ।
दर्शन ज्ञान मयं शुद्धं सम्यक्तं शाश्वत ध्रुव ॥१७५॥

भावार्थ – बुद्धिमानो को सदा ही सम्यक् दर्शन का उपदेश करना चाहिये । यह सम्यक्दर्शन आत्मा का शुद्ध स्वभाव है । दर्शन ज्ञानमयी अविनासी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है ।
(ज्ञान समुच्चयसार से)

५०. धर्म उत्तम धर्मस्य मिथ्यारागादि खंडित ।
चेतना चेतन द्रव्यं शुद्ध तत्व प्रकाशक ॥१७४॥

भावार्थ – धर्म वही है जो रत्नत्रय धर्म का पोषक हो जिसमें मिथ्यात व रागद्वेषादि विभाव भावो का खण्डन हो · जो चेतन व अचेतन द्रव्यो को यथार्थ जनकाता हो तथा जो शुद्ध तत्वका प्रकाश करनेवाला हो ।

५१. धर्म अर्थ तो अर्थंच तो अर्थ वेदन युत्त ।
पट्कमलं त्रिॐकार धर्म ध्यानंच संयुत्त ॥१७५॥

भावार्थ – धर्म प्रयोजन के उद्देश्य को लिए हुए होता है । तीन अर्थ जो रत्नत्रय है उसकी अनुभूति सहित है । छः अक्षर रूप ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः कमलसहित व ॐ सहित रत्नत्रयरूप ऐसे धर्मध्यान सहित है ।

५२. पदस्य पिंडस्य येन रूपस्य व्यक्त रूपये ।
चतुर्ध्यानंच आराध्य शुद्ध सम्यग्दर्शनं ॥१७७॥

भावार्थ – जिनके पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये चार प्रकार का ध्यान आराधन करने योग्य है । वही शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारी है ।

५३. पदस्य पद विंदते अर्थं सर्वार्थं शाश्वतं ।
व्यंजनं तत्व सार्थंच पदार्थं तत्र संयुतं ॥१७८॥

भावार्थ – जो ज्ञानगम्य अतीन्द्रिय परमात्मा का पद है। उस अतीन्द्रिय पद के अतीन्द्रियभाव में जो [illegible] हो रहे हैं। वे [illegible] तारण तरण जिन मुक्ति को जा रहे हैं।

६१ ज दलन दलिय जिन दलन पी तं दलन ममय सिलिरत्तु ।
सिद्धि जिन तरण विन्यान सु मुक्ति पजो ॥६॥

भावार्थ – जो आत्मानुभव करते करते [illegible] जिनेन्द्र का पद प्रगट होता है। उसी पद का अनुभव करनेवाला अर्हन्त का आत्मा है जो सिद्ध स्वभाव में लीन है। वे [illegible] तारण तरण जिन मुक्ति को जा रहे हैं।

(ममलपाहुड–[illegible] पुष्प)

६२. जय उत्त जय वयनं जय कर्नं सहाय जय रमन ।
जय अर्क अर्कं जय कमलं कमल सुई करन जय निर्वान ॥२८॥

भावार्थ.– केवली के कथन की जय हो, जिनवाणी की जय हो, स्वाभाविक साधन की जय हो, स्वात्मरमण की जय हो, सूर्य समान तेजस्वी आत्मा की जय हो, कमलसमान प्रफुल्लित आत्मा की जय हो। आत्मा आप ही साधन होकर निर्वाण को जीत लेता है।

६३. मुनि सिय ध्रुव सुई रमनं दिप्ति सुइ दिष्टि शब्द पिय जयन ।
जय न्यान विन्यान सु सुवनं मे उवनं उवन केवल न्यानं ॥२९॥

भावार्थः– मुनि वही है जो शुद्ध हो, ध्रुव हो व आत्मा मे रमण करता हो। जिसके भीतर अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन हो, मुनि शब्द प्यारा है जो सिद्धो की विजय को बता रहा है। केवलज्ञान मे स्वय परिणमन करनेवाले सिद्धो की जय हो, आत्मज्ञान के प्रकाश से ही उनमे (मुनियो मे) केवलज्ञान का प्रकाश हुआ है।

नोट (१):– यहा मुनि शब्द को सिद्ध मे घटाया है। जो जाने उसे मुनि कहते है याने जो द्वादशाग द्रव्य श्रुत ज्ञान का पाठी हो। वैसे ही सिद्धो मे भी अनतज्ञान है इससे मुनि है।

(२) – इस पुष्पमे सिद्धो का ही गुणगान किया गया है जिसकी उपमा चार सघ रूप दी है ऋषि, यति, मुनि, अनगार जो चार सघ प्रसिद्ध है

१ ऋषि– ऋद्धिधारी मुनियो को ऋषि कहते है ।
२ यति– क्षपक या उपशम श्रेणी पर आरुढ ध्यानी मुनियो को यति कहते है ।
३ मुनि– अवधि या मन पर्यय ज्ञानी साधुओ को मुनि कहते हैं ।
४ अनगार– गृहरहित सामान्य साधुओ को अनगार कहते है ।

(ममलपाहुड–चतुर्विधसघ-पुष्प)

**६३. सम्यक् दर्शनं न्यानं चारित्रं शुद्धात्मानं ।
स्व स्वरूपंच आराध्यं त्रिभंगी समय खंडनं ।।४८।।**

भावार्थः– सात तत्वो का या आत्मतत्व का श्रृद्धान करना सम्यग्दर्शन है तत्वो का अनुभवपूर्वक जानना सम्यग्ज्ञान है । आत्मतत्व मे स्थिर होना सम्यक्चारित्र है ये तीनो ही रत्नत्रय शुद्धात्मा के गुण हैं ।

(त्रिभगी सार से)
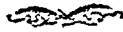
सम्यक् दर्शन और उसका महात्म्य

यह संसार असार है, [illegible] है, [illegible] है, सहज-शुद्ध आत्मा का स्वभाव है, सुख का मार्ग एक [illegible] [illegible] है, जिसे रत्नत्रय धर्म कहते है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की एकता है। यही मोक्ष का मार्ग है, जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित है।

आत्मा के शुद्ध स्वभाव का यथार्थ श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान, कुज्ञान है व चारित्र, कुचारित्र है।

सम्यग्दर्शन के बिना सब साधन मिथ्या है। जैसे जड़ बिन वृक्ष, नीव बिना मदिर व एक के अक बिना शून्य की कोई कीम नही, वैसे ही सम्यक्त्व के बिना किसी भी धर्म को यथार्थ नही क जा सकता। सम्यग्दर्शन आत्मा का एक गुण है, जो सदा काल विद्य मान रहता है। ससारी आत्मा के साथ कर्मसयोग भी अनादिकाल है। इन्ही मे एक 'मोहनीय कर्म' भी है वह २ प्रकार है। दर्शन मो नीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय ३ प्रकार है:- मिथ्या सम्यग्मिथ्यात, सम्यक्तमोहनीय। मिथ्यात- जिस कर्म के उदय सम्यग्दर्शन गुण का विपरीत परिणमन हो, आत्मा अनात्मा का भे विज्ञान न हो सके, उसे मिथ्यातकर्म कहते है। सम्यग्मिथ्यात- जि कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन के मिश्रित परिणाम उसे सम्यग्मिथ्यात कहते है। सम्यक्त मोहनीय- जिस कर्म के उद सम्यग्दर्शन मलीन रहे, कुछ दोष लगे उसे सम्यक्तमोहनीय कहते

२. चारित्र मोहनीय - २५ प्रकार की है। वह २ प्रकार कषाय वेदनीय, २ अकषाय वेदनीय १ कषाय वेदनीय, जिससे आत्मा को क्लेश पैदा हो वह १६ प्रकार है :-

१ अनतानुबधी- क्रोध, मान, माया, लोभ
२ अप्रत्याख्यानवधी- क्रोध, मान, माया, लोभ
३ प्रत्याख्यानवधी- क्रोध, मान, माया, लोभ
४ संज्वलन- क्रोध, मान, माया, लोभ

इस प्रकार १६ कषायवेदनी है जो आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण को जागृति नही होने देती है ।

२. अकषाय वेदनीय – जो आत्मा को कष्ट तो न पहुचावे पर आत्मा को रजायमान व्यर्थ की झझट मे डाल कर्म बध करा ही देवे और राग द्वेष पैदा कराकर सुख दुख का भान करावे । वह ९ प्रकार है–१. हास्य, २ रति, ३ अरति, ४. शोक, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसक वेद है ऐसे मोहनीय कर्म २८ प्रकार है । जिसकी कर्म स्थिति ७० कोडा कोड़ी सागर है ।

यह मिथ्या दृष्टि अनादिकाल मे उक्त २८ प्रकार के भावो में या कषायो में बध कर रहा है जिससे इसको आजतक सम्यक्त हुआ ही नही । इन कर्मो को हटाने के लिए व्यवहार सम्यग्दर्शन को सेवन करना जरूरी है ।

ससारी जीव का जानना है कि मै कैसा हू । क्यो यह अशुद्धता है इसके शुद्ध होने का क्या उपाय है । जैसे नौका मे पानी आता हो और छिद्र को बद करने से निर्विघ्न पार पहुचते हैं । वैसे ही हमें भी जानने की जरूरत है कि पाप पुण्य का बध कैसा है । नये बध को रोकना व पुराने बध को काटना इनका उपाय क्या है जिससे वह कर्म रहित हो जावे । अशुद्ध आत्मा जब तक शुद्ध नहीं हो सकता है जब तक अशुद्ध होने के कारण वो उपाय का जानपना न हो ।

इसी बात को जानने को आचार्यों ने सात तत्व बताये है जिनका सच्चा श्रद्धान ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।

१. जीव तत्वः– जीव चेतना लक्षणमय है । ससार अवस्था में अजीव है ।

२ अजीव तत्व – जीव को विकार का कारण, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति काय, आकाशास्ति काय और काल ये पाच चेतना रहित अजीव द्रव्य इस जगत में है ।

३. आश्रव तत्व.– कर्मों के आने के कारण को कर्मों का आश्रव कहते है ।

४. बंध तत्व:- कर्मों के आत्मा के साथ बधने के कारण को कर्मों का बंध कहते है।

५. संवर तत्व.- कर्मों के आने के कारण को रोकने को व कर्मों के रुक जाने को संवर कहते है।

६ निर्जरा तत्व – कर्मों के आत्मा से साथ छूटने के कारण व कर्मों के छूट जाने को निर्जरा कहते है।

७ मोक्ष तत्वः- सर्व कर्मों के छूट जाने के कारण व कर्मों के प्रथक हो जाने को मोक्ष कहते हैं।

यह् विश्व जीव अजीव के साथ छह् द्रव्यो का समुदाय है, इन पुग्दलो मे सूक्ष्म जाति की कर्म वर्गणा है। उन्ही के संयोग से आत्मा अशुद्ध हो जाता है आश्रव तत्व वो बंध तत्व अशुद्धता के कारण को वतलाते हैं। संवर तत्व अशुद्धता के रोकने। निर्जरा अशुद्धता के दूर होने के उपाय वताते है और मोक्ष वंध रहित शुद्ध अवस्था वताता है। इनके ठीक २ जाने विना आत्मा के कर्म की वीमारी नही मिट सकती है।

इनका सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व ४ कषाय व मिथ्यात नाश (उपशम) होना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

जीव अजीव तत्वो मे छह् द्रव्य सतरूप सदा से है, सदा रहेगे, इनको न किसी ने वनाया है न कभी इनका नास होगा, हमारी इद्रियो द्वारा जानने योग्य पुग्दल द्रव्य है। इसको परीक्षा की जाय तो सिद्ध होगा कि यह सत् है, अविनासी इसका कभी नास नही हो सकता है। सत् का लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये तीन स्वभाव एक ही समय मे पाये जावे। हर दृष्टिगोचर पदार्थ क्षण-क्षण वदलता है। पर स्थूल वुद्धि से ज्यादा समय मे वदलाहट मालूम पडती है। जैसे मकान का वनना, भोग्य पदार्थों का वासा होना, वालक का वदना, वस्त्र का जीर्ण होना, व मैला होना, आदि पर्याय पलटने की अपेक्षा उत्पाद व्ययपना व मूल तत्व रहने से ध्रौव्यपना सिद्ध है जैसे सोने कुडल वनना, कुडलपना का उत्पाद, कडेपना का व्यय स्वर्ण का ध्रुवपना।

यह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यपना हर पदार्थ में पाया जाता है। जो अशुद्ध अवस्था में अशुद्ध जीवों मे पलटना अनुभव में आता है। शुद्ध जीव व शुद्ध द्रव्य मे किसी पर द्रव्य का ऐसा निमित्त नही है जो द्रव्य को मलीन कर सके। निर्मल जल मे तरंगे भी निर्मल होती है।

(१) द्रव्यों में ६ सामान्य गुण भी पाये जाते है –

१. अस्तित्वगुण – जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी नाश न हो उसे अस्तित्व गुण कहते है।

२. वस्तुत्व गुणः– जिस शक्ति के निमित्त से वस्तु कुछ कार्य करे व्यर्थ न हो, उसे वस्तुत्व गुण कहते है जैसे पुद्‌गल में शरीर रूप बनने की क्रिया है।

३ द्रव्यत्व गुण:– जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य ध्रुव रहते हुए भी पलटता रहे जैसे पुद्‌गल मिट्टी से घड़ा बनना।

४ प्रमेयत्व गुण – जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी के ज्ञान का विषय हो।

५. अगुरुलघुत्व – जिस शक्ति के निमित्त, से एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न हो, एक गुण दूसरे गुण रूप न हो, कम ज्यादा न हो उसे अगुरुलघुत्व कहते हैं।

६ प्रदेशत्व गुण:– जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उसे प्रदेशत्वगुण कहते हैं।

छहों द्रव्यों में अपना अपना आकार है। पुद्‌गल मूर्तीक द्रव्य है इसमे उसका आकार भी मूर्तीक है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण मय है। शेष पांच द्रव्य अमूर्तीक है। उनमे आकार भी अमूर्तीक है।

(२) इन छह द्रव्यों में विशेष गुण भी है जो उस एक द्रव्य में ही पाये जाते है –

१. जीव द्रव्य का विशेष गुण – ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्‌ चारित्रादि।

२. अजीव द्रव्य के विशेष गुण – स्पर्श, रस, गंध, वर्ण।

३ धर्म द्रव्य के विशेष गुण – गमन करते जीव और पुद्गलों को उदासीन रूप से सहकारी होना।

४. अधर्म द्रव्य के विशेष गुण – ठहरते जीव और पुद्गलों को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक होना है।

५ आकाश द्रव्य के विशेष गुण – सर्व द्रव्यों को अवकाश देना।

६ काल द्रव्य के विशेष गुण – सर्व द्रव्यों को अवस्था पलटने में सहायकारी होना।

(३) इन छह द्रव्यो का आकार:–

१ जीव द्रव्य का आकार – मूल आकार लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है व शरीर में रहते शरीराकार, नाम कर्म के उदय से संकोच विस्तार शक्ति काम करती है। इससे शरीर के साथ रहता है।

२. अजीव द्रव्य का आकार – गोल, चौकूंटे, तिकूंटे, छोटे बड़े बनते है।

३. ४. धर्म व अधर्म द्रव्य का आकार:– लोकाकाश प्रमाण व्यापक है।

५ आकाश द्रव्य का आकार – अनन्त है।

६. काल द्रव्य का आकार – असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों में एक एक अलग २ है कभी मिलते नही है। इसमें– १ प्रदेश मात्र हर एक कालाणु का आकार है।

(४) छह द्रव्यो की संख्या.–

धर्म और अधर्म व आकाश– ये एक द्रव्य है। कालाणु असंख्यात है, जीव अनन्त है। पुद्गल भी अनन्त हैं।

पांच अस्तिकाय:–

जो द्रव्य एक से अधिक प्रदेश रखते है व अस्तिकाय कहलाते है। काल का एक ही प्रदेश है। इसमे काल को छोडकर जीव अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय है।

इस जीव द्रव्य के नव विशेषण है –

१. जीने वाला है। २ उपयोगवान है। ३. अमूर्तीक है। ४. कर्त्ता है। ५ भोक्ता है। ६ शरीर प्रमाण आकारधारी है। ७. ससारी है।

८ सिद्ध भी है। ९. स्वभाव से अग्नि की शिखा समान ऊपर जाने वाले हैं। इनका खुलासा नीचे है।

१ जीवत्वः– निश्चय से जीव के सुख, सत्ता, बोध, चैतन्य चार प्राण हैं। व्यवहार में १० प्राण हैं (५ इन्द्रिय ३ बल १ आयु १ श्वासोच्छ्वास)।

२. उपयोगवान है.– जिसके द्वारा जाना जावे उसे उपयोग कहते हैं वह २ प्रकार है। आठ प्रकार ज्ञानोपयोगमति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन, पर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान, कुमति ज्ञान, कुश्रुति ज्ञान, कुअवधि ज्ञान है। तथा ४ प्रकार दर्शनोपयोग, चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन रूप से १२ प्रकार उपयोग होता है।

ये १२ उपयोग नये से हैं। इन्ही से संसारी जीवो की पहचान होती है। आत्मा अमूर्तीक पदार्थ है। मृतक शरीर मे कोई उपयोग नही होता है। क्योकि वहा उपयोग का रखने वाला आत्मा ही नही है। निक कर्म संबध से यह १२ भेद होते है। वास्तव मे आत्मा के कोई भेद निश्चय मे नही है।

३. अमूर्तीक है – जीव मे निश्चय नय मे न कोई स्पर्श, रस, गध वर्ण है इससे मूर्तीक पुद्गल से भिन्न अमूर्तीक चिदाकार है। व्यवहार में मूर्तीक कहते है। संसारी जीव के साथ मूर्तीक कर्म पुद्गलो का दूध पानी के समान एक क्षेत्रावगाह रूप है।

४. कर्त्ता है.– निश्चय नय से यह आत्मा अपने ज्ञान दर्शनादि गुणो का करता है। शुद्ध निश्चयनय से शुद्धभावों का कर्ता है। जबकि अशुद्ध निश्चय नय से रागादि भावो का कर्त्ता कहा जाता है। ये औपाधिक भाव है। जब कर्मों का उदय होता है, मोहनीय कर्म का विपाक होता है। तब क्रोधादिरूप हो जाता है। जैसे स्फटिक मणि को जैसे रंग की डाक दी जावे उसी रूप परिणत हो जावेगी। आत्मा स्वय स्वभाव से इन विभावो का कर्त्ता नही है। ये नैमित्तिक भाव होते है, मिटते है फिर होते है, क्योकि ये शरीर के संयोग से होते है। इससे कहा जाता है कि आत्मा इनका कर्त्ता है। इनका न होना ही

आत्मा का हित है। जैसे गर्मी के मकान में पानी भाप बन जाता है। वैसे ही कर्म वर्गणा स्वयं [illegible] जाती है। यह बंध पूर्ण कार्माण शरीर में होता है। आत्मा में नहीं। आत्मा उस कर्म के शरीर के साथ उसी तरह रहता है जैसे आकाश में धूआ या रज (धूल) फैल जाय। आत्मा ने कर्म नहीं बांधे हैं, कर्म स्वयं बंधे हैं सिर्फ आत्मा का अशुद्ध भाव निमित्त कारण है।

कुम्हार को घड़ा बनाने वाला, सुनार को कड़ा बनाने वाला स्त्री को रसोई बनाने वाली आदि कहते हैं पर निश्चय से मिट्टी घड़े को, स्वर्ण कड़े को, अन्नपानादि रसोई का कर्ता है। जो वस्तु स्व कार्य रूप है उसी को कर्ता है। कर्ता कर्म एक ही वस्तु है। उसी चेतन का योग, उपयोग ही कारण हो जाता है। जब तक मम आत्मा के साथ कर्मो का संयोग है। कर्मो का उदय हो रहा है। तक आत्मा के मन, वचन, काय योग चलते रहते हैं। और ज्ञानोप अशुद्ध होता है। यद्यपि योग शक्ति (कर्माकर्षण शक्ति) आत्मा है। परंतु वह कर्मो के उदय से ही मन, वचन, काय द्वारा काम क है।

मन वचन काय का योग– कर्म का उदय न तो कुछ भी हलन चलन कार्य न हो। अशुद्ध सराग उपयोग भी क के उदय से है। आत्मा का स्वाभाविक उपयोग नहीं। निश्चय से अ केवल अपने शुद्ध भावों का ही कर्त्ता है। परभावो का न निमित्त है न मूल कर्त्ता है। स्वभाव के परणमन से जो परिणाम हो, कर्म उपादान कर्त्ता कहा जाता है।

आत्मा ज्ञान स्वरूपी है। शुद्ध ज्ञान उपयोग का ही वह दान कर्त्ता है। अज्ञानी जीव भूल से आत्मा को रागादि भावे कर्त्ता अच्छे बुरे कामो का कर्त्ता, घट पट आदि का कर्त्ता बन अह से दुखी होता है। और राग द्वेष करके कष्ट पाता है।

ज्ञानी शुद्ध परणति का कर्त्ता मान अहंकार नहीं करता शुभ राग मे मंद कषाय का उदय, अशुभ राग मे तीव्र कषाय का मानता है। इन विभावो को रोग या उपाधि जानता है। ऐसी भ रखता है। कि ये न होते तो ठीक है।

जैसे बालक खेल का प्रेमी है। पर माता, पिता, गुरु की दहशत से पढता है। पर खेलना उसका स्वत स्वभाव है। याने खेल का प्रेमी है।

पूर्व बद्ध कर्मोदय से जो भाव होते है। तदनुकूल ही मन, वचन काय प्रवर्तते है। इनको वह विकार समझ उनमें वैरागी रहता है। यही शुद्धात्मा का शुद्ध भाव है। ज्ञान सर्व विभावो को कर्म कृत ज्ञान उनसे अलिप्त रहता है।

सम्यग्दर्शन की अपूर्व महिमा है। जो ज्ञानी आत्मा को, पर भावो का अकर्त्ता समझेगा, वही एक दिन साक्षात अकर्त्ता हो जाएगा। उसके योग और उपयोग की चचलता मिट जायेगी। तब वह सिद्ध परमात्मा हो जायेगा। इसका यह मतलब नही कि ज्ञानी सराग कार्यो को उत्तम प्रकार से नही करता, उदासीन रूप से करता होगा। सो नही ज्ञानी मन वचन काय से सर्व कार्य ठीक ठीक करता हुआ भी मैं कर्त्ता, इस अह भाव की मिथ्या कल्पना नही करता है। जहा ज्ञानी कुटुंब पालन, जप तप, पूजा, पाठ, विषय, भोग, आदि मन वचन काय के शुभ अशुभ कार्य उत्तम प्रकार से करता है, प्रमाद और आलस से नही करता है। तो भी मैं कर्त्ता हू। उस मिथ्यात से अलग रहता है। जेसे नाटक मे बना राजा अपने को राजा नही मानता।

ससार को अपना ही कार्य समझना, व्यवहार करना, अज्ञानी का स्वभाव है। यह अज्ञानी ससार का कर्त्ता है। अज्ञानी ससार मे भ्रमेगा। और ज्ञानी ससार का कर्त्ता नही वो ससार से शीघ्र ही छूट जाएगा।

श्रद्धान व ज्ञान मे ससार कार्य को आत्मा का [illegible] नही मानता कषाय के उदय वश लाचारी कार्य जानता है।

५ भोक्ता है:- जिस निश्चयनय से जीव स्वाभाविक भावो का कर्त्ता है। उसी तरह स्वाभाविक ज्ञानानद का भोक्ता है।

१. मैं सुखी मैं दुखी यह भाव मोहनीय कर्म के उदय से होते है। २. रति कषाय के उदय से ससार के सुख मे प्रीतिभाव। ३ अरति कषाय के उदय से ससार के दुख मे अप्रीतिभाव। ४. नाना कल्पना

वेदनीय मे कर्म का भोग [illegible] है । [illegible]
गाना, बजाना, सुगंध, दुर्गंध, [illegible] का भोग ही
उसका प्रधान है । जीव मात्र जो भोग करता है, [illegible] है ।
यहा भी मन [illegible] द्वारा [illegible] उपयोग ही, पर पदार्थो के
भोगो मे निमित्त है ।

जैसे लड्डू खाया गया, [illegible] पुद्गल को, मुख पुद्गल ने
चबाया, जिह्वा पुद्गल मे रस का ज्ञान हुआ, लड्डू का भोग शरीर
रूपी पुद्गल ने किया, उदर मे पाचन [illegible] पहुचा, जीव ने अशुद्ध
भावेंद्रिय रूपी उपयोग मे जाना और [illegible] की क्रिया मे योग को
को काम मे लिया ।

यदि वैराग्य का जाने तो खाने का सुख न माने, जब रा
सहित खाता है तब सुख मान लेता है । कि लड्डू का भोग जीव
किया । इसी प्रकार हर विषयो को जानो । जैसे पानी के बरस
पर किसान सुखी होता है । और बिना छत्री वाला दुखी, नगर
रोग बढने पर रोगी दुखी और डाक्टर सुखी, इच्छानुसार भोज
करने वाला सुखी, प्रति कूल भोजन वाला दुखी,जैसे पुद्गल का कर
पुद्गल है, वैसे पुद्गल का उपभाग कर्त्ता भी पुद्गल है निमित्त कार
जीव के योग उपयोग है जीव का शरीर से ममत्व छूटने पर क
औपाधिक भावो का ज्ञान ही नही हो सकता है ।

जब कर्म का उदय आता है तब ही कर्म का रस प्रगट हो
है यही कर्म का उपभोग है । उसी कर्म के उदय को जीव अपना म
कर, सुखी, दुखी, मान लेता है । साता वेदनीय के उदय मे साताक
पदार्थो का संबध होने से, रति कषाय मे यह रागी जीव साता
का अनुभव करता है । वैसे ही असाता वेदनीय के उदय मे असात
कारी पदार्थो के संबध से अरति कषाय से यही असाता का अनु
कर लेता है ।

घातिया कर्मों का उदय जीव के गुणो पर और अघातिया
कर्मो का शरीरादि पर होता है ।

१ ज्ञाना वर्णी – ज्ञाना वर्ण के विपाक से ज्ञान का कम होना ।

२ दर्शना वर्णी – दर्शना वर्ण के विपाक से दर्शन का कम होना ।

३ मोहनीय – के उदय से विपरीत श्रद्धान होना और कषायों का होना।

४ अंतराय – के उदय से आत्म बल का कम होना।

५ आयुकर्म – के उदय से शरीर का बना रहना।

६ नाम कर्म – के उदय से शरीर की रचना होना।

७ गोत्र कर्म – के उदय से लोकवन्द्य या निन्द दशा का प्राप्त होना।

८ वेदनीय कर्म – के उदय से साताकारी, असाताकारी पदार्थों का संयोग होना।

जीव अपने स्वभाव से सहज सुख का भोक्ता है। पर व्यवहारनय से पर का भोक्ता है।

(६) शरीर प्रमाण आकारधारी है· निश्चयनय से जीव का आकार लोक प्रमाण है। उससे कम या अधिक नहीं हो सकता है। जैसे जीव में कर्म को आकर्षण करने वाली योग शक्ति है वैसे संकोच विस्तार की भी शक्ति है जो शरीर नाम कर्म के उदय से काम करती है। जब तक नाम कर्म का उदय रहता है तब तक ही आत्मा के प्रदेश संकुचित रहते हैं। जब नाम कर्म नाश हो जाता है तब अंतिम शरीर में जैसा रहता है वैसा ही रह जाता है। संकोच विस्तार बंद हो जाता है।

एक आदमी जब मरता है तब तुर्त ही दूसरे उत्पत्ति स्थान पर पहुंच जाता है। बीच में जाते १-२ या ३ समय लगते हैं तब तक पूर्व शरीर के समान आत्मा का शरीर बना रहता है। जब उत्पत्ति स्थान पर जैसे पुद्गल ग्रहण करता है उस रूप छोटा या बड़ा हो जाता है। जैसे २ शरीर बढ़ता है वैसे २ शरीर के भीतर आत्मा भी बढ़ता है। बाहर नहीं। इसका अनुभव निरन्तर ही होता है। यदि आत्मा शरीर के एक स्थान पर होता तो सुख दुख का अनुभव उसी जगह पर होता सर्वांग नहीं, पर होता सर्वांग है इससे जीव शरीर प्रमाण आकारधारी है।

इस प्रकार के [illegible] ७ कारणों से आत्म प्रदेश शरीर से बाहर जाता है और फिर शरीर प्रमाण हो जाता। [illegible] को समुद्घात कहते हैं –

1. वेदना समुद्घात – शरीर में दर्द के निमित्त से प्रदेश [illegible] बाहर निकलते है।

२. कषाय समुद्घात – क्रोधादि कषाय के निमित्त से प्रदेश बाहर निकलते है।

३ मरणांतिक समुद्घात – मरण के कुछ समय पहले जीव के प्रदेश फैलकर जहा जन्म लेना है वहा तक जाते है। स्पर्श कर लौट आते है फिर मरण होता है।

४ वैवितयक समुद्घात – शरीरधारी अपने शरीर से दूसरा शरीबना उसमे आत्मा को फैलाकर उससे काम लेते है।

५. तैजस समुद्घात – १ शुभ तैजस– किसी तपस्वी मुनि को रोग दुर्भिक्षादि देख दया आवे तब दाहने स्कध से तैजस शरीर के साथ आत्मा फैलकर कष्ट दूर करे जैसे विष्णुकुमार मुनि ने किया। २ अशुभ तैजस– किसी तपस्वी मुनि को उप-सर्ग पडने पर क्रोध आ जावे तो वाय स्कध से अशुभ तैजस के आत्मा फैलकर कोप भाजन को व खुद को भी भस्म करे जैसे द्वीपायन मुनि ने किया।

६ आहारक समुद्घात– किसी ऋद्धिधारी मुनि के दशम द्वार मस्तक से आहारक शरीर सुन्दर पुरुषाकार एक हाथ प्रमाण निक-लता है। जहा केवली श्रुत केवली हो वहाँ जाता है औ दर्शन कर लौट आता है और मुनि का ससय मिटाता है।

७ केवल समुद्घात – किसी अर्हंत केवली की आयु अल्प हो औ अन्य कर्मों की स्थिति अधिक हो तब आयु कर्म के बराबर सब कर्मों की स्थिति करने के लिए आत्मा के प्रदेश लोक व्यापी हो जाते हैं और फिर शरीर प्रमाण हो जाते है॥

(७) **संसारी है** – सामान्यता से ससारी जीवो के २ भेद है। त्रस, स्थावर विशेष मे १४ भेद है। जिन्हे समास कहते है।

१ एकेन्द्रिय सूक्ष्म– जो प्राणी लोक भर मे है जो किसी को बाधक नही न किसी से बाधा पाते है स्वय मरते है।

२. एकेन्द्रिय बादर– जो बाधा पाते है और बाधक है।

३ द्वेइद्रिय ४. तेइन्द्रिय ५. चौइंद्रिय ६ पचेंद्रिय असैनी ७. पचेंद्री सैनी
। मान समूह पर्याप्ति अपर्याप्ति के भेद से १४ प्रकार के समास या
मूह जानो ।

पर्याप्ति–A– जब यह जीव किसी योनी में पहुचता है वहां जिन
पुद्गलो को गृहण करता है उनमे १ आहार २ शरीर
३ इंद्रिय ४ श्वासोच्छ्वास ५. भाषा ६ मन बनने की
शक्ति ४८ मिनट में हो जावे उसे पर्याप्ति कहते हैं ।

निर्वृत्य पर्याप्ति–B– जिस जीव के शक्ति की पूर्णता होगी पर शरीर
बनने की पूर्णता नही हुई तब तक उसे निर्वृत्य पर्याप्ति
कहते हैं ।

लब्ध पर्याप्ति–C– जो ६ में से कोई पर्याप्ति पूर्ण नही कर सके और
नाडी फड़कन के १८वे भाग में मर जाते हैं उनको लब्ध
पर्याप्ति कहते है ।

एकेंद्रिय के– आहार, शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास ४ पर्याप्ति होती है।
२ दो इंद्रिय से– असैनी पचेंद्रिय तक भाषा सहित ५ पर्याप्ति होती है।
३ सैनी पचेंद्रिय के– मन सहित ६ पर्याप्ति होती है ।
४ पुद्गलो के मोटा भाग व रस रूप करने की शक्ति आहार पर्याप्ति है ।
संसारी जीवो की ऐसी अवस्था जहा वे ढूंढने से मिल सके
१४ है जिन्हे मार्गणा कहते है।

चौदह मार्गणा

१. गति–चार है– १. नरक २ तिर्यंच ३ देव ४ मनुष्य ।
२. इंद्रिय–पांच है– १ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ४ चक्षु ५ श्रोत्र ।
३. काय–छै. है– १. पृथ्वी २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५. वनस्पति
६. त्रस ।
४ योग–३ व १५ है १ मन के– सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार हैं
२ वचन के सत्य, असत्य, उभय अनुभय, चार है । ३ काय के
औदारिक, औदारिक मिश्र. वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहा
रक, आहारक मिश्र, कार्माण ये ७ है सब मिल १५ है ।

नोट – १. जिन वचन को सत्य असत्य कुछ भी न कह सकें अनुभय
कहते है ।

२ मनुष्य तिर्यंच के स्थूल शरीर को औदारिक कहते है।
३ मनुष्य तिर्यंच के स्थूल शरीर की अपर्याप्त अवस्था मे औदारिक मिश्र होता है।
४ मनुष्य तिर्यंच के स्थूल शरीर की पर्याप्त अवस्था मे औदारिक कहते है।
५ देव नारकी के स्थूल शरीर की पर्याप्त अवस्था मे वैक्रियक कहते है।
६ देव नारकी के स्थूल शरीर की अपर्याप्त अवस्था मे वैक्रियक मिश्र कहते है।
७ आहारक समुद्घात मे जो आहारक शरीर बनता है उसकी अपर्याप्त अवस्था मे आहारक मिश्र योग होता है।
८ पर्याप्त अवस्था में आहारक योग होता है।
९ एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर को प्राप्त होने के मध्य की विग्रह गति मे कार्माण योग होता है ।

जिसके निमित्त से आत्मा के प्रदेश कम्प हो और कर्मों को खीचा जा सके उसे योग कहते है वे १५ है जो एक वक्तमेएकहीहोता।

५. वेद-तीन है– १ स्त्री २ पुरुष ३ नपुंसक जिससे क्रम से पुरुष स्त्री भोग व उभय भोग की इच्छा हो ।

६ कषाय-चार है– १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ

७ ज्ञान– मत्ति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, केवल कुमति, कुश्रुति कुअवधि,

८ सयम– सात है सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्ध, सूक्ष्म सापराय, यथाख्यात, देशसयम, असयम

नोट – सयम का न होना असयम, श्रावक के व्रत पालना, देश सयम, है ।बाकी ५ मुनियो के होते है –
समताभाव रखना सामायिक, समता के छेद होने पर समतामे आना छेदोपस्थापना, विशेष हिंन्स्या का त्याग परिहार विशुद्ध, सूक्ष्म लोभ के उदयमात्र मे हो सूक्ष्मसापराय, सर्वकषायो के उदय न होने पर यथाख्यात सयम होता है ।

९ दर्शन– चार है चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल,

१० लेस्या– ६ है कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल, १ कषायो के

उदय से मन वचन काय योगो के चलन से जो शुभ अशुभ भाव होते है उनको बताने वाली ३ शुभ व ३ अशुभ है

अशुभतम– कृष्ण अशुभतर, नील, अशुभकापोत है

शुभ-पीत, शुभतर पद्म, शुभतम, शुल्क है

११-भव्य– दो है १ जिनको सम्यक होने की योग्यता हो वे भव्य २ जिनको योग्यता न हो उनको अभव्य कहते है।

१२-सम्यक– ६ हैं उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र,

१३-सज्ञी–२ हैं आहार अनाहार। स्थूल शरीर के बनने योग्य पुद्गलो को ग्रहण करे उसे आहार, और न ग्रहण करे तो अनाहार है। ये १४ मार्गणा एक साथ हर एक प्राणी मे पाई जाती है।

श्लोक–

गई इदिये च काये, जीयेवेये कषाय णोणव।
सयम देसण लेस्सा भविया समत्तसण्णि आहारे ॥१॥

गुणजीवा पज्जती पाणा सण्णाय मग्गण ओये।
उव ओगो विपकममो, वी सतु परूपणा भणिया ॥२॥

प्राणा विय पच्चाविय, जाउय कुल कोडिसुखा सच्चे।
गण्हाति येण भणिया कमेण चउवीस ठाणाणि ॥३॥

(१४) गुणस्थान – ससार मे उलझे हुये प्राणी जिनमार्ग पर चलते हुए शुद्ध हो जाते है, उस मार्ग की १४ सीढिया है। इन सीढियो को चढकर यह जीव सिद्ध परमात्मा हो जाता है। मन वचन काय के योगों के निमित्त से ये गुणस्थान बने है, जो मोहनीय कर्म कहाते है जो दो प्रकार के है। १ दर्शन मोहनिय– जो ३ प्रकार का है मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनिय, चरित्र मोहनी २५ प्रकार है अनन्तानुबधी आदि ४ कषाय ४ से १६ भेद व नव नो कषाय (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद)

१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४. अव्रत, ५. देशव्रत, ६ प्रमत्तव्रत, ७ अप्रमत्तव्रत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तकरण, १० सूक्ष्म साम्पराय,

११ उ[illegible] १२ [illegible] १३ [illegible] १४. अयो-केवली जिन मे १० वी [illegible] है–

[illegible]

१ मिथ्यात्व गुणस्थान– [illegible] और मिथ्यात्व कर्म का उदय [illegible] है [illegible] गुणस्थान [illegible] है ।

इस श्रेणी का जीव [illegible] सम्यग्दृष्टि होता है तब अनन्तानुबंधी ४ [illegible] मिथ्यात्व का [illegible] सम्य-दृष्टि हो जाता है ।

२. सासादन– साधारण स्थिति रहती है ।

३ मिश्र– सच्चा झूठा न [illegible] । सम्यक्त्व और मिथ्यात के मिश्र परणाम दुधगुड के समान मिश्र रहते है ।

४ अव्रत सम्यक्त्व– इस गुण स्थान मे उपशम सम्यक्ति अन्त मुहूर्त रहता है । क्षयोपशम सम्यक्ति अधिक भी रहते ।

जो अनतानुबधी कषाय व दर्शन मोहनीय का तीनो प्रकृति नष्ट कर डालता है । वह क्षायक सम्यक्ति होता है । क्षायक सम्यक्त कर्म नही छूटता है । इस श्रेणी मे जीव अतरआत्मा हो जाता है । आत्म को आत्मा रूप जान, ससार को नाटक समजता है । अतीन्द्रिय सुख का प्रेमी हो गृहस्थी बन असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्पविद्या, पटकर कर राज्य प्रबध करता है । व्रतो को नियम से नही पालता है इस अवृत्ती है । इसके ४ लक्षण है -

१. प्रशम – शातभाव २ सवेग – धर्मानुराग और ससार मे वैरा
३. अनुकपा – दया, ४ आस्तिक्य – आत्मा और परलोक मे विश्वा

इस श्रेणी वाले की ६ लेश्या होती है । सब ही सैनी पचद्रिय तिर्य देव, नारकी, इस गुणस्थान को प्राप्त कर सकते है । यही दर्जा मो का प्रवेश द्वार है यही प्रवेशिका की कक्षा है ।

५ देशव्रत– जब सम्यक्ति के अप्रत्याख्याना वर्ण कषाय का उदय न होवे और प्रत्याख्याना वर्ण कषाय का मद उदय होवे तब श्रावक व्रत पालता है ५ अनुव्रत ७ शीलो को पालता हुआ साधुपद की भाव करता है । गृही कर्म करता हुआ चरित्र की उन्नति करता है साधुपद पहुचता है । इसका समय कम से कम अतमुहूर्त, ज्यादा से ज्यादा जी

यंत है । इस श्रेणी को पचेंद्री तिर्यच व मनुष्य ही धार सक्ते है
प्रमत्त व्रत– जब प्रत्याख्याना वर्ण कपाय का उपशम होता है । तब ५ महावृतो को पालता हुआ महात्मा बन जाता है । इस श्रेणी में आहार विहारादि वा उपदेश के कार्य करता है कुछ प्रमाद होने से पूर्ण आत्मस्थ नही होता है । इसका समय अतमुहूर्त से ज्यादा नहीं है ।

अप्रमत्त व्रत– जब महाव्रतधर ध्यानस्थ हो जाता है, प्रमाद नष्ट कर देता है तब इस श्रेणी मे अत मुहूर्त ठहरता है । वह महावृती पुन.– पुन छटे सातवे मे आता जाता रहता है इसके २ भेद हैं । १ जहा कपायों का उपसम किया जावे क्षय न किया जावे वह उपसम श्रेणी २ जहा कपायो का क्षय किया जावे वहा वहा क्षपक श्रेणी कहते है ।

१ उपसम में ८–९–१०–११ गुनस्थान होता है नियम से गिर ७ वे तक जाता है ।

२ क्षपक श्रेणी मे ८–९–१०–१२ गुनस्थान है ११ वे मे नही जाता, सीधा १ वे गुनस्थान पहुचता है ।

८. अपूर्व करण– यहाँ ध्यानी महात्मा के अपूर्व उत्तम भाव होते है, शुक्ल ध्यान होता है । यहा का काल अत मुहूर्त है ।

९. अनिवृत्ति करण– यहां बहुत ही निर्मल भाव होते हैं । शुक्ल ध्यान के प्रताप से सूक्ष्म लोभ के सर्व कपायो को उपसम या क्षय कर अत मुहूर्त से अधिक समय नही रहता है ।

१०. सूक्ष्म सांपराय– यहा ध्यानी महात्मा के एक सूक्ष्म लोभ का ही उदय रहता है यहा भी अत मुहूर्त ठहरता है ।

११ उपशांत मोह– जब मोह कर्म बिलकुल दब जाता है । तब यह दशा अत-मुहूर्त होकर यथाख्यात चरित्र व वीतरागता प्रगट करती है ।

१२. क्षीणमोह– मोह का क्षय क्षपक श्रेणी चढते हुए १० वें गुणस्थान से फिर सीधे यहा आकर अतमुहूर्त ध्यान मे ठहरता है । शुक्ल ध्यान के बल से ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, और अतराय कर्मों का नाश कर देता है । तब केवल ज्ञान के प्रकाश होते अर्हंत परमात्मा हो जाता है ।

१३. सयोग केवली जिन– अर्हंत परमात्मा ४ घातिया कर्मों के क्षय होने पर अनन्त दर्शन, अनंतज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, [illegible]

लब्धियों से विभूषित हो समस्त [illegible] के [illegible] को विहार करते हे उपदेशादि, भव्यजन [illegible] करते है।

१४ अयोग केवलीजिन— [illegible] जाती है जितनी देर अ इ उ ऋ लृ ये ५ [illegible] किये जाते तब यह गुणस्थान होता है। आयु [illegible] कर्म आयु नाम गोत्र, वेदनीय का नाश होता है। [illegible] आत्मा कर्म रहित होकर सिद्ध परमात्मा हो जाता है। फिर संसारी नही होता है,, जैसे भुना-चना फिर नही ऊगता,

(१) १४ जीवसमास, १४ मार्गणा, १४ गुणस्थान ये [illegible] के संसारी जीवों के है।

(२) जीव समास और गुणस्थान एकही जीव के एकही वक्त [illegible] समय में एक ही होवेगी पर मार्गणा १४ एकही [illegible] होवेगी।

(८) सिद्ध है — सर्व कर्म रहित सिद्ध परमात्मा ज्ञानानंद में मग्न कर्मो के नाश से ८ गुणसहित शोभायमान है वे गुन १ ज्ञान २ दर्श ३ सम्यक्त ४ वीर्य ५ सूक्ष्मत्व ६ अवगाहनत्व ७ अगुरु लघुत्व ८ अव्या-बाधत्व है।

(९) ऊर्ध्वगमन स्वभाव : सब कर्मों के नष्ट हो जाने से सिद्ध [illegible] आत्मा ऊपर ही जाता है। कारण ऊर्ध्वक स्वभाव है। जहा तक [illegible] द्रव्य है। वहा जाकर अंत में ठहर जाता है। अन्य संसारी आत्म शरीर को छोडकर दूसरे शरीर में जाते ६ दिशावो मे [illegible] मोडा लेकर सीधी जाती है। कोनो में व टेढे नही विदिशावो में नही दिशा व ऊपर वो नीचे इन दिशा मे जाती है ॥

तात्पर्य ये है — कि

पहिले से तीसरे गुणस्थान वाले बहिरात्मा, चौथे से बारहवे गुणस[्थान] वाले अंतरात्मा, तेरहवे चौदहवे गुणस्थान वाले सशरीर परमात्मा क[ह]लाते है। सिद्ध शरीर रहित निकल परमात्मा कहाते है।

तत्व ज्ञानी को उचित है कि बहिरात्मा पन को छोड अंतरात्मा [बन] जावे, और परमात्मा पद के प्राप्ति का साधन करे यही ध्येय बन[ावे]

" जो अपने ही पुरुषार्थ से पासकेगा, प्रार्थना करने या मांगने से [किसी] का लाभ नही ,,

आश्रव तत्व

अजीव में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल गर्भित हैं

स्पर्श रसगंध वर्ण पुद्गल के २ भेद हैं १ परमाणु २स्कंध

अविभागी पुद्गल खंड को परमाणु कहते है।

दो व अनेक परमानुवे के मिलने पर जो वर्गना बनती है पर स्कंध है जो ६ प्रकार की है.–

(१) स्थूल स्थूल– जो स्कंध कठोर है। खंड होने पर बिना दूसरी चीज के संयोग के न मिल सके जैसे लकडी, कागज, वस्त्रादि।

(२) स्थूल– जो स्कंध बहने वाले हो जो अलग किये जाने पर फिर स्वय मिल सकें जैसे पानी शर्बत दूधादि।

(३) स्थूल सूक्ष्म– जो स्कंध देखने मे बहुत बडे हो और हाथो मे ग्रहण न हो सकें जैसे धूप प्रकाश छायादि

(४) सूक्ष्म स्थूल– जो देखने में न आवे और चार इंद्रिय मे ग्रहण होवे हवा शब्द रस गंधादि

(५) सूक्ष्म– जो बहुत परमानुवो का स्कंध हो जो किसी इंद्रिय से ग्रहण में न आवे जैसे भाषा वर्गना, मन वर्गना, कार्माण वर्गनादि

(६) सूक्ष्म सूक्ष्म– जो स्कंध सबसे सूक्ष्म हो जैसे २ परमानुवो का स्कंध

"जीव और पुद्गल का संबंध ही संसारी आत्मा की अवस्थाएं है,,

सर्व पुद्गल का पसारा है यदि पुद्गल को अलग कर दिया जावे तो हर एक जीव शुद्ध होवेगा, संसार मे जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से ४ काम, चलना, ठहरना अवकाश पाना, बदलना, करते हैं।

हरएक कार्य उपादान व निमित्त कारण से होता है।

सोने के काम में उपादान सोना व निमित सुनार व यंत्रादि है।

समय आवली घडादि निश्चय काल की पर्याय है यद्यपि छहों द्रव्य एक ही स्थान पर रहते है तथापि मूल स्वभाव से भिन्न है न कभी नाश होते न नाश होते है॥

आश्रवतत्व और बंध तत्व

१ [illegible] शरीर के साथ जीव का प्रवाह की अपेक्षा अनादि से कर्म पुद्गल के मिलने बिछुडने की अपेक्षा सादि संबंध है।

१ [illegible] शरीर मे, नये कर्मों के आने का नाम आश्रव [illegible] है

। कर्म वर्गणाओ के [illegible] को [illegible] है
ये दोनो काम साथ २ होते है
। मन वचन काय की प्रवृत्ति से [illegible] होता है।
। योग के साथ आत्मा के प्रदेशो का [illegible] होना [illegible] से कर्म
वर्गणा को खीचना, कषायो के साथ तीव्र, मन्द, [illegible] करता है
यह वध ४ प्रकार है १ प्रकृति २ प्रदेश ३ स्थिति ४ अनुभाग
(१) योगो से प्रकृति व प्रदेश वध होता है
(२) कषायो से स्थिति और अनुभाग वध होता है
१. प्रकृत्ति वध– ज्ञानावरणी दर्शनावरणादि स्वभाव होने रूप प्रकृति-वध है।
२ प्रदेश वध– कितनी संख्या को ज्ञानावरणादि रूप कर्म बाधे सो प्रदेश वध है।
३ स्दिति वध– कितने समय तक ठहरने का शक्ति वध किया सो स्थिति वध है।
४ अनुभाग– हर वधे कर्म मे तीव्र या मद फल दान शक्ति को अनुभाग वध कहते है।

आठ कर्मो मे से साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र, पुण्य कर्म है जबकि असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, ज्ञानावर्णादि चार घातिया कर्म पाप कर्म है।

"योग और कषाय सामान्यता से आश्रव व वध का कारण है।"

आश्रव के विशेष कारण– मिथ्यात, अवृत प्रमाद कषाय व योग है॥

१ मिथ्यात– ५ प्रकार के है सच्चा श्रृद्धान न होकर जीवादि तत्वो का मिथ्यात श्रद्धान होना ही मिथ्यात है।

२ अव्रत भाव– १२ प्रकार भी है। वो ५ प्रकार भी है।
अ ५ इद्रिय व मन को वश न कर उनका दास होना व छै काय के जीवन की रक्षा का भाव न होना १२ प्रकार है
व हिसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिगृह, (मूर्च्छा) ये ५ पाप भी अवृत भाव है।

३ प्रमाद– आत्मानुभव मे, धर्मध्यान मे, आलस्य करने को प्रमाद कहते है वह ८० प्रकार है। ४ विकथा × ४ कषाय × ५ इन्द्रिय × १ स्नेह

१ निन्दा = ८० भेद हैं। देश, राजा, भोजन स्त्री कथा करनाविकथा है
कषाय- के २५ भेद जो ऊपर बता चुके हैं।
योग से- १५ या ३ भेद पहले बता चुके है।

गुणस्थानों की अपेक्षा आश्रव व बध के कारण –
गुणस्थान में- उपरोक्त ५ ही कारणो से बध होता है।
" – मिथ्यात छोड शेष चार कारणो से बध होता है।
" – मिश्र भाव सहित अवृत, प्रमाद, कपाय योग हैं।
" – मिथ्यात, मिश्रभाव, अनतानु बधी कपाय को छोड शेष
वृत प्रमाद, कपाय व योग है।
" – एक देशवृत होने से अवृत भाव कुछ घटा, अप्रत्याख्याना-
ण कपाय भी छूट गया शेष अवृत,प्रमाद कपाय व योग बध के कारण
" – महावृती होने से अवृत भाव बिलकुल छूट गया प्रत्याख्याना
रण कपाय भी नहीं रहा शेष प्रमाद कपाय व योग बध के कारण है।
" – प्रमाद भाव नही रहा केवल कपाय व योग है।
" – कपाय व योग मद हैं।
" – हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा नोकपाय नही है,
संज्वलन ४ कपाय, ३ वेद अतिमद हैं।
१० " – केवल सूक्ष्म लोभ, कपाय व योग है।
११, १२ १३ गुनस्थान में- इनमे सिर्फ योग है।
१४ " – में योग भी नही इससे बध का कारण घट गया।

कर्मों का फल निर्जरा

कर्मों का बध हो जाने पर जो पकने में समय लगे उसे अबाधा काल
कहते हैं १ कोडा कोटी का बध हो तो १०० वर्ष पकने मे लगेंगे

बधे कर्मों मे परिवर्तन –

एक बार कर्म का बध हो जाने पर ३ प्रकार परिवर्तन होता है –
१ सक्रमण- पाप कर्म को पुण्यकर्म, या पुण्यकर्म को पापकर्म में बदलना।
२ उत्कर्षण- कर्मों की स्थिति व अनुभाग को बढा लेना।
३. अपकर्षण- कर्मों की स्थिति व अनुभाग को घटा लेना।
जैसे–पापकर पश्चाताप करे तो पुण्य में बदले, पुण्यकर पश्चाताप करे तो
पाप में बदले, तो पापकर्म की स्थिति व अनुभाग घट जावे या बढे

जावेगी ।

[illegible]

हम मान [illegible]

स्थिति [illegible]

बंध होगा ।

ऐसे जीवन में ८ [illegible]

तो मरने के पहले [illegible]

आयु बंध होता है । जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष है तो [illegible] समयों

मे वध होगा ।

(१) ५४ वर्ष बीतने पर (२) ७२ वर्ष बीतने पर (३) ७८ वर्ष बीतने पर (४) ८० वर्ष बीतने पर (५) ८० वर्ष ८ माह बीतने पर (६) ८० वर्ष १० माह २० दिन बीतने पर (७) ८० वर्ष ११ माह १६ दिन १६ घटे बीतने पर (८) ८० वर्ष ११ माह २५ दिन १८ घटे बीतने पर । नही तो ४ दिन १० घटे शेष रहने पर वध हो जावेगा । अगर इतने मे वध नही हो तो मरण के पहले वध हो जावेगा ।

१ गुणस्थानो की अपेक्षा वध उदय सत्ता ।

२ आठ कर्मो की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति ।

सवर और निर्जरा

आत्मा के अशुद्ध होने के कारण आश्रय व वध है । कर्म अपनी स्थिति के भीतर फल देकर व विना फल दिये झडते है । तथापि अज्ञानी मिथ्या दृष्टि जीव कभी भी रागद्वेष से खाली नही है हर समय कर्म वध करता है । अज्ञानी की कर्म निर्जरा हाथी के स्नान वत है कभी सूंड से जल डारता है तो कभी धूल भी डारता है । रागी द्वेषी ससार योग वो कुटुंब के होने से वध ज्यादा व निर्जरा कम करते ह । पर ज्ञानी ससार, शरीर, भोगो से उदास रहकर पाप पुण्य मे समभाव रखता है । इसमे वध कर्म वो निर्जरा जादा करता है । जीव के ३ प्रकारके भाव होते है

अ अशुभोपयोग– से पाप कर्मो का वध करता है ।

ब शुभोपयोग– से पुण्य कर्मो का वध करता है ।

स शुद्धोपयोग– से कर्मो का क्षय करता है ।

विवेकी को उचित है कि पाप से वचे पुण्य करे वो पुण्य से हट कर कर्म

भावार्थ– परम शुद्धात्मा की भावना की जावे और रागादिक भावो के विरोधी भावो का राग छोड दिया जावे । क्योंकि परिणामो से ही बंध व मोक्ष है ।

इनसे विषयो की इच्छा छोड शास्त्र मनन करो ।

५०. समयं दर्शनं ज्ञानं चरण तप सहि कारिनो ।
समय प्रवेश अज्ञान व्रत तप मिथ्या सगुत्तं ।।१२५।

भावार्थ – सच्चा आगम वही है जो सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, सम्यक्तप, का सहकारी हो । मिथ्या व्रत तप की प्रेरणा कर वाला अज्ञान आगम मे प्रवेश है ।

ज्ञान समुच्चय सा

५१ राग सहाव उत्तं जन रंजन पुण्य भाव सजत्तं ।
अनृत असत्य सहियो राग सयुत्त नरय वासम्मि ।।९२।।

भावार्थ – राग का स्वभाव ऐसा है कि जिससे लोगो को रजायमान क वाले पुण्य कार्य पूजा, गान, भजनादि किये जाते है यद्यपि वह श काम है पर निश्चय मे अतरग मे मिथ्यात भाव भरा हुआ है जो असत्य है ऐसा रागी जीव भी नरक जाता है ।

५२ ज्ञानमई अन्मोय दंशन सहकार चरण अन्मोयं ।
तप अमोय सहावं अवयास अन्मोय सिद्धि संपातं ।।१२२।।

भावार्थ – ज्ञानमई स्वभाव की अन्मोदना, सम्यग्दर्शन को पुष्ट करने वाले चारित्र की अन्मोदना, व जहा तप के अन्मोदना का भाव है वहा सब पदार्थो के जानने वाले केवल ज्ञान की अन्मोदना हो जाती है । ऐसा शुद्धात्मानुरागी सिद्धि को प्राप्त करता है ।

५३ श्रुतच अनेयभेयं वयनं आलाप भये बहुभेय ।
कलसहाव विज्ञानं अनिष्ट अन्मोय सरनि संसारे ।।१३०।।

भावार्थ – शास्त्रो के अनेक भेद हैं । वचनो के आलाप के भी अनेक भेद हैं । उनको अज्ञानी शरीर के स्वभाव मे आरोपन कर लेता है । इस अनुमोदना से संसार का मार्ग बढाता है ।

५४. गाह दोह छन्दानं सामुद्रिक व्याकर्ण जोय संयुत्त ।
सुरंच श्वास निश्वास चन्द्र सूर्यंच गहन मज्जलियं ।।१३१।।

५५. प्रपच मिभ्रम सहिय अनेय भेय शरनि संसारे ।
लोकमूढकलरंज कलुप भाव नंत सरनि संसारे ।।१३२।।

[illegible]

[illegible] (यदि [illegible]

[illegible] नही होगा।

सम्यक्ति के ८ अंग.—

१ नि [illegible]ताग— जिन [illegible] [illegible] गम्यक्ति [illegible] उन पर कभी शंका नही करता है जो जानने [illegible] जिनागम म जान, अश्रृद्धान नही करता ज्ञानी से जानने की इच्छा करता है।

२ नि काक्षिताग— सम्यक्ति ससार के इन्द्रिय जनित सुखो म सुखपने की श्रृद्धा नही रखता ऐसे सुख को दुख का मूल, पाप कर्म वर्धक, तृष्णा वर्धक, आकुलतामय जानता है।

३ निर्विचिकित्सिताग— हर स्वरूप के पदार्थ को विचार, ग्लानि भाव नही करता हैं दुखी दरिद्री रोगी जीवो पर दया भाव रखता है।

४. अमूढ दृष्टिाग— हर एक धर्म की क्रिया को विचारपूर्वक करता है देखा देखी मिथ्या वर्द्धक क्रियाओ म उदासीन भाव रखता है।

५ उपगूहनाग— दूसरे के गुणो को देख अपने गुण बढाता है। पर के औगुण देख निन्दा नही करता है। धर्मातमाओ से कोई दोष हो जावे तो दूर करता है।

६ स्थिति करणांग— अपनी आत्मा को सदा धर्म मे स्थिर रखता है, दूसरो से धर्म साधन कराता है।

७ वात्सल्याग— धर्म व धर्मातमाओ मे गौ वत्सवत प्रेम करता है उनके दुख मेटने का उपाय करता है।

८ प्रभावनाग— धर्म की उन्नति करने का सदा ही प्रयत्न करना एक सम्यक्ति का मुख्य कर्तव्य हो जाता है जिससे अन्य प्राणी भी प्रभावित होकर धर्म धारण कर लेवे वैसा उद्यम करता व कराता है।

सम्यक्ति के ८ लक्षण:—

१ सवेग— ससार, शरीर, भोगो से वैराग्य और आत्मिक धर्म से प्रेम

२ निर्वेद— ससार असार, शरीर अपवित्र, भोग अतृप्तकारी ऐसी भावना। जागृत होती है।

इसी सम्यक् दर्शन को जैनाचार्यों ने [illegible] परिभाषित किया है।

१. अत्ता कुणदि सहाव, अण्णोण्णा [illegible] गाढा ॥६[illegible]॥
तत्थगट्टा पोग्गला [illegible], गच्छन्ति कम्म भाव ।

भावार्थ– आत्मा के अपने ही रागादि परिणाम होते है उनके निमित्त पाकर कर्म पुद्गल अपने [illegible] आकर कर्मरूप होकर आत्मा के प्रदेशो में एक क्षेत्रावगाह [illegible] ठहरते है और उनको बाधता नही है जीव के रागादि भाव भी पूर्व [illegible] कर्म के उदय से होते हैं।

२. एदे काल गासा, धम्मा धम्माय पुग्गला जीवा ।
लभंति दव्व सण्ण कालस्य दुण त्थ का यत्र ॥१०२ ।

भावार्थ – काल, आकाश, धर्म, अधर्म पुद्गल जीव ६ द्रव्य है। काल को छोड़ ५ अस्तिकाय है ।

३. चरिया पमाद बहुला, कालुस्स लोलदा य विसयेसु ।
पर परि ताव पवादो, पावस्स य आसवं कुणदि । १३९॥

भावार्थ – प्रमाद पूर्वक वर्त्तन कलुपता, पाच इद्रियो के विषयो लोलुपता, दूसरो को दुखी करना, व निन्दा करना, पापकर्म के आश्रव है

४. सण्णा ओय तिलेस्सा इद्रिय व स दाय अन्त रुद्दाणि ।
णाणंच दुप्प उत्त मोहो पावप्पदा होंति ॥१४० ।

भावार्थ – आहार, भय, मैथुन, परिगृह ४ सज्ञा, कृष्ण, नील, कापो ये तीन लेस्या, भाव इद्रियो के वश मे रहना, आर्त, रौद्र ध्यान, कुम में लगाया हुआ ज्ञान, ससार मे मोह, ये सब पाप के कारण है ।

५ जो संवरेण जुत्तो णिज्जर माणोद्य सव्व कम्माणि ।
वगद वे दाउस्सो, भुयदि भव तेण सो मोख्खो ॥१५३॥

भावार्थ – कर्मो के के आने को रोककर सवर सहित हो सर्व कर्मो छय कर देता है वह वेदनीय, आयु नाम, गोत्र से रहित ससार त देता है यही मोक्ष मार्ग का स्वरूप हे । मोक्ष प्राप्तात्मा के कोई श नही है ।

भावार्थ– दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं,
चारित्र से भ्रष्ट हैं और सम्यग्ज्ञान से भ्र
मोक्ष पा सकते हैं।

१२. ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा पंडि
सम्मतं सिद्धि यर सिविणे विण

भावार्थ – वे ही धन्य, कृतार्थ, वीर, प
भी सिद्धि देने वाले सम्यग्दर्शन को म
आत्मानुभूति प्राप्त की है।

१३. रागो दोसो मोहो इंद्रिय सण्णाय
मण वयण काय सहिदा दु आसव

भावार्थ – राग द्वेष मोह इंद्रिय विषय,
तीन अभिमान क्रोधादिक कषाय, मन वचन काय
द्वार है।

श्री वट्टकेर–मूलाचा

१४ श्रद्धानं परमार्थां नामाप्तागम तपो भृतान।
त्रिमूढा पोढ मष्टागं सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥४॥

भावार्थ – सत्यार्थ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान सम्यग्दर्शन
अग सहित ३ मूढता रहित ८ मद रहित होना चाहिए।

श्री समन्तभद्राचार्य–रतन करड श्रा

१५ सम्यक् दर्शन शुद्धा नारक तिर्यंङ् नपुंसकं स्त्री त्वाति।
दुष्कुल विकृताल्पायु दरिद्रता च व्रजन्ति नाप्य व्रतिका ॥

भावार्थ– सम्यक् दृष्टि व्रत रहित होने पर भी नारकी पशु नपुस
नीच कुली, विकलागी, अल्पायुदरिद्री नही पैदा हो सकता है

श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकाड श्रावकाचार

१६ अरहंत सिद्ध चेइय सुद्देय धम्मेय साधु वग्गेय।
आयरिये सव्ज्झाएसु पवयेण दंशणे चावि ॥४६।

भावार्थ– दर्शन से भ्रष्ट है वे भ्रष्ट है, निर्वाण नही पा सकते । पर चारित्र से भ्रष्ट है और सम्यक्त्व से भ्रष्ट नही है वे चारित्र पाकर मोक्ष पा सकते है ।
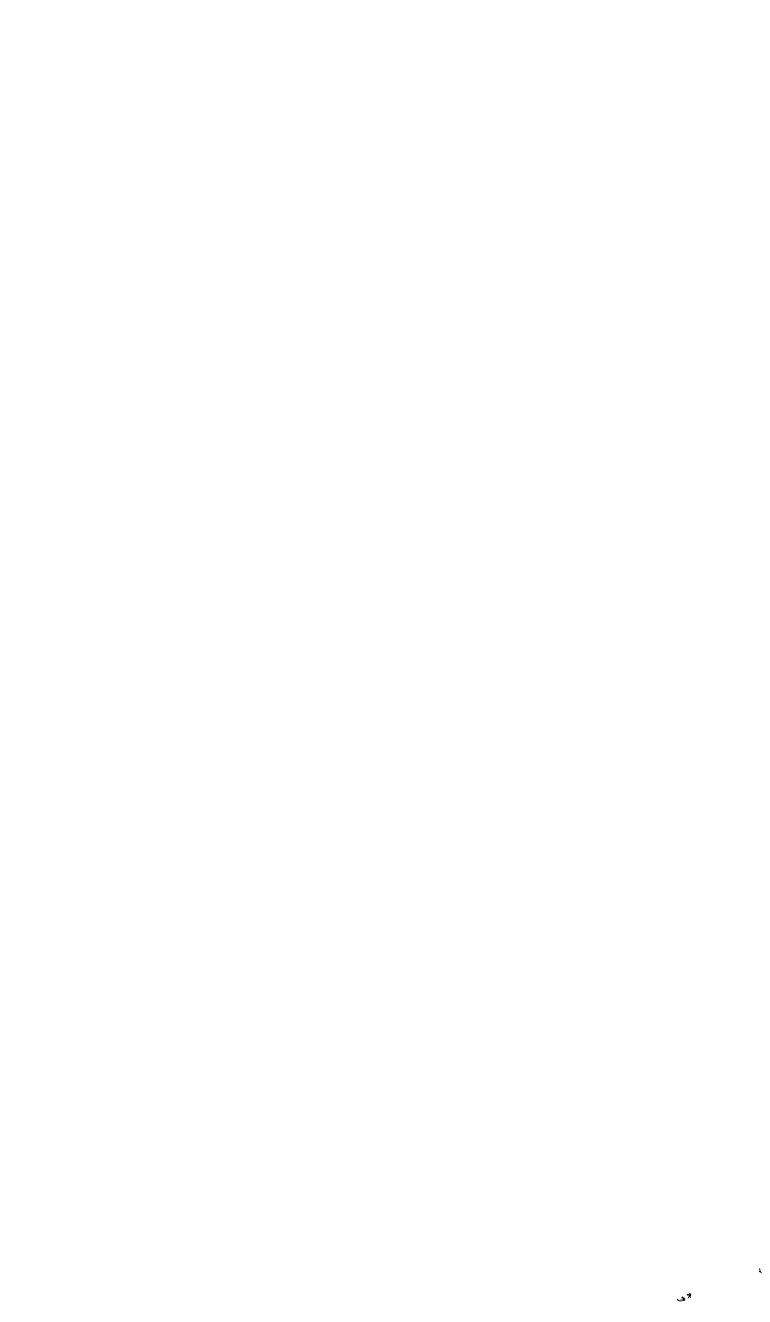
कुन्दकुन्दाचार्य–दर्शन पाहुड

१२. ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा पंडिया मणुया ।
सम्मतं सिद्धि यर सिविणे विण मइलियं जेहि ।।८९।।

भावार्थ – वे ही धन्य, कृतार्थ, वीर, पंडित मनुष्य है जिनने स्वप्न मे भी सिद्धि देने वाले सम्यग्दर्शन को मलिन नही किया निरति चार आत्मानुभूति प्राप्त की है ।

कुन्दकुन्दाचार्य–अष्ट पाहुड

१३. रागो दोसो मोहो इद्रिय सण्णाय गार व कसाया ।
मण वयण काय सहिदा दु आसवा हुंति कम्मस्स ।।३८।।

भावार्थ.– राग द्वेष मोह इद्रिय विषय, सज्ञा, ऋद्धि गौरव रस गौरव तीन अभिमान क्रोधादिक कषाय, मन वचन काय कर्मो के आने के द्वार है ।

श्री वट्टकेर–मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षा मे

१४ श्रद्धानं परमार्था नामाप्तागम तपो भृतान ।
त्रिमूढा पोढ मष्टाग सम्यग्दर्शन मस्मयम् ।।४।।

भावार्थ – सत्यार्थ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है वह ८ अग सहित ३ मूढता रहित ८ मद रहित होना चाहिए ।

श्री समन्तभद्राचार्य–रतन करड श्रावका चार

१५ सम्यक् दर्शन शुद्धा नारक तिर्यङ नपुंसक स्त्री त्वाति ।
दुष्कल विकृताल्पायु दंरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्य व्रत्तिका ।।३५।।

भावार्थ– सम्यक् दृष्टि व्रत रहित होने पर भी नारकी पशु नपुसक स्त्री नीच कुली, विकलागी, अलपायुदरिद्री नही पैदा हो सकता है ।

श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकाड श्रावकाचार

१६ अरहंत सिद्ध चेइय सुद्देय धम्मेय साधु वग्गेय ।
आयरिये सव्ज्झाएसु पवयेण दंशणे चावि ।।४६ ।

२२ [illegible] ।
[illegible] ॥ ७॥

भावार्थ– [illegible]
आत्मा को [illegible] ।

२३ निच्छई लोयपमाण मुणि [illegible] ।
एहउ अप्पसहाउ मुणि [illegible] ॥२[illegible]

भावार्थ– निश्चय से आत्मा लोक प्रमाण है पर व्यवहार से शरीर प्रमाण है ऐसा आत्मा का स्वभाव जान भव सागर के तट पर पहुंच जावो ।

श्री योगेन्द्र [illegible]– योगसार

२४. चउरासी लक्खह् फिरिउ काल अणाई अणतु ।
परसमत्त ण लद्धु जिउ एहुउ जाणि णि भतु ॥२[illegible]।

भावार्थ– यह जीव अनते काल से अनते काल तक चौरासी लक्ष योनि मे विना सम्यक्त के फिरा, पर सम्यक् दर्शन नही मिला यह वात बिन शसय जानो, यदि सम्यक रत्न हाथ लग जाता तो भव भ्रमण मे न फिरता

२५. योगा प्रदेश बंध, स्थिति बधो भवति य कषायात्तु ।
दर्शन बोध चारित्रं न योग रूप कषाय रूपंच ।।२१५॥

भावार्थ – योगो से प्रदेश व प्रकृत्तिबध, कषायो से स्थिति व अनुभाग बध होता हे । सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्र न योगरूप न कषायरूप है । इससे रत्नत्रयबध का कारण नही है ।

श्री अमृत चद्राचार्य–पुरुषार्थ सिद्धि उपाय

२६ नरक गतिम शुद्धै सुन्दरै स्वर्ग वास ।
शिव पद मन वंद्य यति शुद्धैर कर्मा ॥
स्फुट मिह परिणामै श्चेतनः पोष्यमाणैः ।
रिति शिव पद कायेस्ते विधेयावि शुद्धा । ७८॥

भावार्थ – अशुभ भावसे नरक, शुभ भावो मे स्वर्ग वास होता है । कर्म रहित जीव शुद्ध भावो से प्रशसनीय शिव पद पाता है । तब जो मोक्ष की आशा करते है उनको चैतन्य स्वरूप आत्मा के परिणामो के द्वारा शुद्ध भाव रखना योग्य है ॥

श्री अमिति गति [illegible]–तत्व भावना

३१. कारण कर्म बन्धस्य पर द्रव्यस्य चिंतन ।
स्वद्रव्यस्य विशुद्धस्य तन्मोक्षस्य हेतव ।१६-१५।
भावार्थ – पर द्रव्य की चिन्ता से कर्म बंध होता है, किन्तु आत्म द्रव्य की चिन्ता मात्र कर्मों से मुक्ति देने वाला है ।

भट्टारक ज्ञानभूषण कृत ज्ञान तरंगिणी

३२ भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट शीतल चित्त भयो जिमि चंदन ।
केलि करे शिव मारग में जग माहि जिनेश्वर के लघु नंदन ।:
सत्य स्वरूप सदा जिनके प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन :
शांत दशा जिनकी पहचान करें कर जोर बनारसी बंदन ::

बनारसीदास नाटक समयसार

३३. ग्रंथन के पढे कहा पर्वत के चढे कहा, कोटि लक्ष बढे कहा रंक पनमें : संयम आचरे कहा मौनव्रत धरे कहा तपस्या के करें कहा कहा फिरे वनमें :: छंद करें नय कहा योगासन भये कहा, दान हू के दये कहा बैठे साधु जनमें जो लो ममता न छूटे ममता डोरी हू न टूटे ब्रह्म ज्ञान बिना लोभ की लगनमें : ५५

३४. मौन रहे वनवास गहे वर काम दहे जु सहे दुख भारी ।
पाप हरें शुभरीत करें जिन वैन धरे हिरदे सुखकारी ।:
देह तपें बहु जाप जपें न वि आप जपें ममता निर वारी :
ते मुनि मूढ करे जग रूढ लहे निज गेह चेतन धारी :५६

द्यानत राय-द्यानत विलास

३५ मिथ्या भाव जौलो तौलो भ्रमसो न नाता टूटै,
मिथ्या भाव जौलो तौलो कर्म न छूटिये ।
मिथ्या भाव जौलो तौलो सम्यक न ज्ञान होत,
मिथ्या भाव जौलो तौलो अरि नाहि कूटिये ।
मिथ्या भाव जौलो तौलो मोक्ष को अभाव रहै,
मिथ्या भाव जौलो तौलो पर संग जूटिये ।
मिथ्या का विनास होत प्रगटे प्रकाश जोत सूधो,
मोक्ष पथ सूधे नेकु न अहूटिये । १२।।

३६. छहो द्रव्य नव तत्व भेद जाके सब जानै,
दोष अठारह रहित देव ताको परमानै ।
संयम सहित सुसाधु होय निर्ग्रन्थ निरागी,

५२. पूर्व पूर्व पर जिनोक्त परा पूर्ण पर शास्त्र ।
पूर्व धर्म धुरा वरन्तियु यो शुद्धात्म स्वरूपम ५

५३. शुद्ध सम्यग्दर्शन चसमग्र प्रोक्त पूर्ण जिन
ज्ञान चरण सम स्वयच अमल सम्यक्त बीज वदे ६

भावार्थ– चौदह पूर्व भेद जो जिनवाणी के है अत्यन्त प्राचीन जिन भगवान के कहे है वे उत्कृष्ट पूर्ण परम आगम है। मुनिगण पूर्वो की धर्म धुरा के रूप मे निर्मल शुद्धात्मा का धारण करते है। यही शुद्धात्मा का अनुभव निश्चय सम्यग्दर्शन है। यही आत्मा है। ज्ञान और चारित्र के साथ स्वय ही यह आत्मा निर्मल है यही आत्म ज्ञान सम्यग्दर्शन का बीज है। विचारवानो द्वारा जानने योग्य है।

५४. अस्तित्व अस्ति शद्धच आत्मन' परमात्मनः :
परमा परम शुद्धं अप्पा पर मप्प भमं बुधै ::६३ :

भावार्थ– आत्मा परमात्मा का स्वाभाविक अस्तित्व बना रहता है परमात्मा परम शुद्ध आत्मा को कहते है। आत्मा परमात्मा के समान निश्चय से है, ऐसा बुद्धिमाना ने कहा है।

५५. नास्ति घातिकर्माण नास्ति शल्यच रागय
दोप नास्ति मल मुक्त नास्ति कुज्ञान दर्शन ६४ :

भावार्थ– परमात्मा के ४ घातिया कर्म नही, ३ शल्य नही न राग–द्वेप है, सर्व मल से रहित है, न मिथ्या ज्ञान है न मिथ्या मार्गका उपदेश है

ज्ञान समुच्चयसार मे

५६. पट कर्म शुत्र सम्यक्त्त सम्यक्त्त अर्थ शास्वत .
सम्यक शुद्ध ध्रुव सार्द्ध सम्यक्त्त प्रत पूर्णित ::३८::

भावार्थ– शुद्ध भावना के साथ मुनि या श्रावक के ६ कर्म सम्यक् दर्शन सहित ही होते है अविनासी पदार्थ सम्यग्दर्शन है यही सम्यक्त शुद्ध है ध्रुव है और यथार्थ है।

५७ देव देवाधि देवच, नत चतुष्टय सयुत ।
ॐकारस्य वदते तिप्टते शास्वत ध्रुव ४०::

३ चरणानु योग वेद – मन वचन काय को स्थिर करने को निराग चारित्र्य मे उपयुक्त होने को व्यवहार चारित्र की आवश्यकता है बताया है। साधु का चरित्र व गृहस्थ, श्रावक का चरित्र, बताया है।

४ द्रव्यानुयोग वेद – इसमें छ द्रव्य, पांच अस्ति काय, सात तत्व नौ पदार्थ का व्यवहार नय से पर्याय रूप। निश्चय नय से द्रव्य रूप कथन हो। शुद्धात्म अनुभव की रीतिया बताई गई है।

इस प्रकार वेदो का यथा सभव अभ्यास करना व्यवहार सम्यक् ज्ञान का सेवन है।

इस सम्यक् ज्ञान के आठ भेद है इनके जानने से ज्ञान बढेगा। भाव शुद्ध होगे, कषाय मद होगे, वा ससार से राग घट, वैराग्य बढेगा।

सम्यक् ज्ञान के आठ अग या भेद –

१ ग्रन्थ शुद्धि – शास्त्र के वाक्यो को शुद्ध पढे।
२ अर्थ शुद्धि – शास्त्रो का अर्थ ठीक ठीक समझे।
३ उभय शुद्धि – ग्रन्थ को शुद्ध पढना व शुद्ध समझना। दोनो का ध्यान एक साथ राखे।

४ काल शुद्धि – जब परणामो मे निराकुलता हो तब शास्त्र पढे। सवेरे दोपहर व शाम, सामायिक का समय टाल शास्त्र पढे।

५ विनय शुद्धि – अन्तरग प्रेम पूर्ण भक्ति को विनय कहते है। विनय से शास्त्र पढने से आत्मज्ञान का लाभ होता है।

६ उपधान शुद्धि – धारणा करते हुए ग्रन्थ को पढे। बगैर धारणा अज्ञान का नाश नही होगा।

७ बहुमान शुद्धि – शास्त्रो को बहुत मान या प्रतिष्ठा से विराजमान कर पढे और सुरक्षित रखे।

८ अनिन्हिय शुद्धि – शास्त्र के अर्थ को छिपावै नही।

यद्यपि ज्ञान एक ही है जो आत्मा का स्वभाव है जैसे सूर्य का प्रकाश मेघ के आ जाने से कम ज्यादा होता है वैसे ही ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम या क्षय से ज्ञान के पांच भेद, १ मति २ श्रुति ३ अवधि ४ मन पर्यय ५ केवल रूप है।

३. सिद्धो शुद्धो आदा, सव्वण्हु सव्व लोय दरसीय ।
सो जिनवरेहिं भणियो, जाण तुमं केवलं णाणं ।।३५।।

भावार्थ.– यह आत्मा ही सिद्ध है, शुद्ध है सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है तथा यही केवल ज्ञान स्वरूप है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य–मोक्षपाहुड

४. जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह वि रयणं अमिद भूद ।
जर मरण वाहि वे यण खय करणं सव्व दुक्खाण ।।९५।।

भावार्थ.– जिनवानी का पठन पाठन मनन ऐसी औषधी है जो इंद्रिय-विषयो के सुख मे वैराग्य पैदा करनेवाली है । अतीन्द्रिय सुखरूपी अमृत को पिलाने वाली है । जरा मरण व रोगादि उत्पन्न होने वाले सर्व दु खो को क्षय करने वाली है ।

श्री वट्टकेर स्वामी–मूलाचार प्रत्याख्यानाधिकार

५. विंजण शुद्धं शुत्तं अत्थ विशुद्धं च तदुभय विशुद्धं ।
पमदेण य जप्पंतो णाण विशुद्धो हवई ऐसो ।।८८।।

भावार्थः– जो कोई शास्त्र के वाक्यो को, अर्थ को व दोनो को प्रयत्न-पूर्वक शुद्ध पढता है उसी के ज्ञान की शुद्धता होती है ।

श्री वट्टकेर–मूलाचार- पचाचार

६. वंधश्च मोक्षश्च तपोश्च हेतु, वद्धश्च मुक्तश्च फलंच मुक्तेः ।
श्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्त दृष्टे रूवमतो ऽसि शास्त्रा । १४।।

भावार्थ – हे सभवनाथ आपने अनेकान्त वस्तु के स्वरूप का स्याद्वाद नय से उपदेश दिया है । इससे आपके दर्शन में वध तत्व, मोक्ष तत्व सिद्ध होता है । दोनो का साधन भी ठीक २ होता है । वद्ध मुक्तात्मा की, वो फल की भी सिद्ध होती है । जो वस्तु को ऐकान्त मानते है उनके यहा ये सब वाते सिद्ध नही होती है ।

श्री समन्त भद्राचार्य–स्वयभू स्तोत्र

७. अन्यून मनतिरिक्तं यथा तथ्यं विनाच विपरीतात् ।
निसंदेहं वेद यदाहुस्त ज्ज्ञांन भाग मिनः । ४२।।

भावार्थ.– वस्तु के स्वरूप को न कम जाने, न अधिक जाने, न विपरीत जाने किन्तु जैसा का तैसा जाने, सन्देह रहित जाने उसको आगम के ज्ञाता सम्यक्तवान कहते है । श्री समन्त भद्राचार्य–रत्न करड

२१. ग्यारह अंग पढ़े नव पूरब, मिथ्या बल जिय करहिं बखान।
दे उपदेश भव्य समझावत, ते पावत पदवी निरवान ॥
अपने उर में मोह गहलता, नहिं उपजै सतधारण ज्ञान।
ऐसे दरबश्रुत के पाठी, फिरहिं जगत माहे भगवान ॥११॥

भैया भगवती दास- ब्रह्मविला

२२. निहचे में एक रूप व्यवहार में अनेक,
याही नय विरोध ने जगत भरमायो है ।
जग के विवाद नाशवे को जिन आगम है,
ज्यामें स्याद्वादनाम लक्षण सुहायो है ॥
दर्शन मोह जाको गयो है सहज रूप,
आगम प्रमाण ताके हिरदे म आयो है ।
अनय सो अखडित अनूतन अनत तेज,
ऐसो पद पूरण तुरन्त तिन पायो है । ९॥

वनारसी दास- समयसारना

सम्यग्ज्ञान के विषय में तारण स्वामी क्या कहते हैं:-

२३ ऊवं ह्लियं श्रियकार, दर्शनं च ज्ञानं ध्रुवं ।
देवं श्रुतं गूरू चरणं, धर्म सद्भाव शाश्वतं ॥६ ।

भावार्थ –जो ॐ ह्री श्री रूप आत्मा जिसमे अविनाशी दर्शन है व
देव, गुरू, धर्म वा शास्त्र है जो अविनाशी सत्तारूप पदार्थ है ।

२४. शुद्ध तत्वं च वेदन्ते, त्रिभुवन ज्ञानेश्वरम् ।
ज्ञान मयं जलं शुद्धं, स्नानं ज्ञान पण्डित ॥१०॥

भावार्थ – तीन भुवन के ज्ञान के ईश्वर शुद्धात्मा तत्व का ही अनु
करते है और वे ही ज्ञानमयी शुद्ध जल मे स्नान करते है वे ही प
जन हैं ।

२५ दृष्ठितं शुद्ध समयं च, सम्यक्त्व शुद्धं ध्रुवं ।
ज्ञानं मयं च सम्पूर्ण, मगल दृष्टि सदा बुधै. ॥१८॥

भावार्थ.– जहा शुद्ध आत्मा दिखाई पडता है वही अविनाशी शु
सम्यक्त है, वही पूर्ण ज्ञान है उन्ही बुद्धिमानो की निर्मल दृष्टि है

३०. ज्ञान सहाव सु समय, अन्योयं विमल ज्ञान सहकारं ।
ज्ञानं ज्ञान सरुव, ज्ञान अन्मोव सिद्ध सपातं ।।२४।।

भावार्थ – ज्ञानकी सहायता से यह आत्मा उत्तम हो जाता है । निर्मल हो जाता है । क्योंकि यह आत्मा स्वय ज्ञानवान है इसी ज्ञान की सहायता से सिद्धपद भी प्राप्त हो जाता है ऐसी आत्माको नमस्कार है

३१. इष्टंचपरमं इष्टं, इष्ट अन्योय त्यक्त अनिष्टं ।
पर पर्याय विलयं, ज्ञान सहावेन कर्म जिनियंच ।।२५।।

भावार्थ – जिन्होने स्वय अपनी आत्मा में मोक्ष प्राप्त कर लिया है और अनिष्टरूप इन्द्रिय ज्ञान को त्यागन कर दिया है और विकार करने वाली पर्यायो को भी नष्ट कर दिया है । कर्मरूपी पर्वत को चूर कर मोक्ष पद पाया है ऐसे देव को नमस्कार है ।

३२. जिन वयनं शुद्ध शुद्धं, अन्मोय विमल शुद्ध सहाकारं ।
विमलं विमल सहाव, ज रयन रयन स्वरूप सं मिलियं ।।२६।।

भावार्थ – श्री जिनेन्द्रदेव के वचन शुद्ध से शुद्ध व निर्मल है ऐसे वचन योन जिनवाणी का श्रृद्धान करने से आत्मा भी अशुद्ध से शुद्ध व निर्मल होकर जरा मरन रुप गतियो मे भ्रमण न कर अपने स्वरूप मे रम जाता है ।

विचार मत-कमल वत्तीसी पाठ

३३. मति ज्ञान दर्शन कृत्या, श्रुतं ज्ञान अणुव्रत ।
अवधि ज्ञानं तपः सार्धं, ज्ञान सहकारि लब्धये ।।८७।।

भावार्थ – दर्शन उपयोग पूर्वक मति ज्ञान होता है । मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होता है । श्रतज्ञान पूर्वक व्रत होते है । अवधि ज्ञान एक ऋद्धि है जो तप करने से आत्म ज्ञान के साथ पैदा होती है ।

३४ ज्ञानं च दर्शनं शुद्धं ज्ञान चरणं संयुत ।
ज्ञान सहतप शुद्ध, ज्ञान केवल लोचन । ९२।।

भावार्थ – जिनका आत्म ज्ञान सहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप है वे ही केवल आख वाले है, उन्हो की दृष्टि शुद्ध है ।

३५. दर्शनं दर्शते शुद्ध, ज्ञानं लोक लोकित ।
दर्शन ज्ञान योगेन, चरन व्रत तपः श्रुतं. ।।९३।।

दूसरी तरफ बढा लेना । ४ स्मृत्यन्तराधान- मर्यादा का भूल जाना ।
२. देशवृत – जन्म पर्यन्त किये प्रमाण मे से प्रतिदिन [illegible]
नियमो को करना देशवृत है । इससे यह फल होगा कि नियमित काल
के लिए नियमित क्षेत्र मे ही आरंभ करेगा उसके बाहर आरंभी हिंसा
से वचेगा ।
१ आनयन- मर्यादा के बाहर की चीज मंगाना । २ प्रेष्य प्रयोग मर्यादा
के बाहर चीज भेजना । ३ शब्दानुपात- मर्यादा के बाहर बात करना ।
४. रूपानुपात- मर्यादा के बाहर रूप दिखा प्रयोजन बताना । ५ पुद्गलक्षेप
– ककर पत्थर फेक हेतु जताना ।
३ अनर्थदड वृत- नियमित क्षेत्रो मे प्रयोजन भूत कार्य के सिवाय व्यर्थ
आरभ करने का त्याग, (अ) पापोपदेश- पाप करने का उपदेश देना
(ब) हिंस्यादान- हिंस्याकारी वस्तु मागे देना । (स) प्रमादचर्या- आलस्य
से वृक्षादि वस्तुओ का नाश करना । (उ) दु श्रुति- राग द्वेष बढानेवाली
कुकथा सुनना व पढना । (ई) अपध्यान- दूसरो के अहित का विचार न
करके हिंसक परिणाम रखना ।
१ कन्दर्प- भड वचन कहना । २ कौत्कुच्य- भड वचन के साथ काय की
कुचेष्टा करना । ३ मौखर्य- बहुत बकवाद करना । ४ असमीक्ष्य अधिकरण
–विना विचारे काम करना । ५ उपभोग परिभोग मानर्थक्य भोगोपभोग
के पदार्थो का वृथा सग्रह करना ।
वृथा पापो के त्याग से सार्थक कामो मे मन लगता है और वृतो के
अभ्यास से साधुपद मे चारित्र पालने मे शिक्षा मिले उन्हे शिक्षावृत कहते है
१ सामायिक- एकान्त मे बैठकर राग द्वेष छोडकर समता भाव रखकर
आत्म ध्यान का अभ्यास करना तीनकाल जरूरी है ।
१- मनःदुप्रणिधान- सामायिक की क्रिया से बाहर मन को चचल करना
२ वचनदुप्रणिधान- सामायिक के पाठ के सिवाय और कोई बात
करना । ३ काय दु प्रणिधान- शरीर को थिर न रख प्रमादी बनाना ।
४. अनादर- सामायिक मे आदर भाव न रखना । ५ स्मृत्यनुपस्थान-
सामायिक न करना या पाठ भूल जाना
२ प्रेषधोपवास- एक मास में २ अष्टमी २ चौदश को ऐकाशन करना
या उपवास करना, धर्म ध्यान मे समय बिताना प्रोषधोपवास है ।
१–२ -३. विना देखी व विना झाडी भूमि पर मलमूत्रादि करना, वस्तु
रखना व उठाना, शयन करना । ४ अनादर- उपवास मे आदर भाव

७ पाकर फल नही खाता ८ अजीर नही खाता ९ जुआ नही खेलता १० चोरी नही करता ११ शिकार नही खेलता १२ वेश्या गमन नही नही करता १३. पर स्त्री सेवन नही करता १४ पानी दोहरे छन्ने से से छानकर शुद्ध पीता है १५ रात्री भोजन के त्याग कारण था शक्ति उद्योग करता है, तथा वह ६ कर्म साधता है।

१ देवपूजा– श्री जिनेन्द्रदेव सदृश आत्मदेव को मान ध्यान करता है। २ गुरु उपासना:- गुरु की सेवा करता है। ३ स्वाध्याय– शास्त्र स्वाध्याय या श्रवण नित्य करता है। ४ संजम– रोज सामायिक करता है ५. तप– नियमादि से इंद्रिय दमन करता है। ६ दान– लक्ष्मी को चार दान मे खर्च करता है।

ग्यारह प्रतिमा का स्वरूप

१ दर्शन प्रतिमा – पाक्षिक श्रावक के नियमो को पालता हुआ सम्यग्दर्शन को निर्मल रखता है। आठ अग सहित पालता है। पॉच अणुव्रतो को पालता है। अतिचारो से बचता है।

२ व्रत प्रतिमा – पहले के नियमो को पालता हुआ २५ अतिचारो को बचाता है। सातशीलो को पालता है। उनके अतीचार बचाने का अभ्यास करता है। एकासन या उपवास को यथाशक्ति पालता है।

३ सामायिक प्रतिमा – पहले के नियम पालता हुआ सवेरे दुपहर शाम सामायिक करता है। २ घडी या ४८ मिनट से कम नही करता है पर पाचो अतिचारो को बचाता है।

४ प्रोपधोप वास प्रतिमा – पहले के सब नियम पालता हुआ महीने मे ४ दिन प्रोपध पूर्वक उपवास करता है। अतिचारो को बचाता है और ध्यान मे समय बिताता है।

अ– उत्तम उपवास १६ प्रहर, मध्यम १२ प्रहर का, जघन्य ८ प्रहर का करे, आरभ आठ प्रहर का छोडे।

ब– उत्तम उपवास १६ प्रहर, मध्यम १६ प्रहर का करे ३ प्रकार का आहार त्यागे, आवश्यकतानुसार जल लेवे, जघन्य १६ प्रहर धर्म ध्यान करे आवश्यकतानुसार जल लेवे या एक भुक्त करले। जैसी शक्ति हो ॥

करते है वे पात्र भी रखते है। पात्र साथ घरो मे एकत्र कर अंतिम घर मे जल लेकर भोजन कर, पात्र साफ कर साथ रख लेता है। जो क्षुल्लक एक ही घर मे भोजन करते है। वे आदर से जाकर भोजन दिये जाने पर एक घर ही मे थाली मे जीमते है बैठकर, यह भोजन का पात्र नही रखते। मुनिपद की क्रियाओ का अभ्यास करते है। स्नान का त्याग है एक ही बार भोजन करते है।

२) ऐलक– चद्दर छोड देते है लगोटी रखते है साधुवत भिक्षार्थ जाते है। एक ही घर मे बैठकर हाथ पर ग्रास रखे जाने पर भोजन करते है। यह कमडल काठ का ही रखते है। केश लोच भी नियम से अपने हाथो करते है।

इन श्रेणियो से उन्नति करते–करते स्वरूप के उदय का अभ्यास कर पचम श्रेणी अनतानुबधी अप्रत्याख्यानबधी कषाये तो रहती है। प्रत्याख्यान कषायो का उदय मद होता जाता है। व ११ वी श्रेणी मे बिलकुल मद हो जाता है और वीतरागता बढ जाती है। प्रत्याख्यानावरण कषाय को जीत साधु पद मे परिग्रह त्याग निर्ग्रंथ हो स्वानुभव का अभ्यास करके अर्हत हो सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

इस सहज सुख के पाने को जो भी अभ्यास किया जाता है सहकारी है। जैनधर्म का यही सार है। प्राचीन महात्माओ ने यही गुप्त धर्म का पालन किया था व उपदेश दिया है। इसी को अव्यक्त, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, आत्मा, समयसार, स्वसमय, परमयोग, धर्म ध्यान, शुक्लध्यान आदि कहते है। आत्म विश्वास कर आत्मानुभव करना चाहिए।

सम्यक् चरित्र के विषय मे जैनाचार्य क्या कहते है.–

१. पच समिदो तिगुत्तो पंचेंद्रय संवुडो जिद कसाओ।
दशण णाण समग्गो, समणो सो सजदो भणि दो ।।६१/३।।

भावार्थः– जो महात्मा ५ समिति को पालते है तीन गुप्ति को रखते है। पाचो इद्रियो को वश मे रखने वाले है। कषायो के विजयी है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, से पूर्ण है संयम को पालने वाले है वे ही साधु है।

श्री कुद कुदाचार्य प्रवचन सार

भावार्थ– जो निर्ग्रन्थ है असंग है मान रहित है आशा रहित है रागद्वेष रहित है अहंकार रहित है, उन्ही के मुनि दीक्षा कही गई है। जो स्नेह रहित हैं लोभ रहित है मोह रहित है निर्विकार है क्रोधादि कलुषता रहित है भय रहित है आशा रहित है उन्ही के जैन दीक्षा कही है।

कुन्द कुन्दाचार्य–बोध पाहुड

१०. बाहिरसंच्चाओ गिरि सरि दरिकंदराई आवासो।
सयलोणाण ज्झयणो णिरत्थओ भाव भाव रहि याण। ८९।

भावार्थ– जिन महात्माओ के भावो में शुद्धात्मा का अनुभव नही है उनका बाहरी परिग्रह का त्याग, पर्वत, गुफा, नदीतट, कंदरा का बसना व तप करना, व सर्व ध्यान व आगम का पढना निरर्थक है।

कुन्द कुन्दाचार्य– भाव पाहुड

११ जे के विदव्व सवणा इद्रिय सुह अउलाण छिंदति।
छिंदति भाव सक्षणा झाण कुठोरहि भवरु वख ॥१२२॥

भावार्थ– जो कोई भी द्रव्य लिंगी साधु है और वे इद्रिय सुखो मे आकुल है, वे ससार के दुखो को नही छेद सकते। परतु जो भाव लिंगी साधु है, शुद्धोपयोग की भावना करने वाले है वे ध्यानरूपी कुठार से ससार के दुखो के मूल कर्मो को छेद डालते हैं।

कुन्द कुन्दाचार्य–भाव पाहुड

१२. सामाइयह्मि दुकदे समणो दूर साव ओ हवदि जह्मा।
एदेण कारणेणदू वहुसो सामाइयं कुज्जा ॥३४।

भावार्थ– सामायिक ही करने से वास्तव मे साधु या श्रावक होना है, इसलिए सामायिक को बहुत बार करना चाहिए।

१३. समणोति संजदोतिय रिसिमुणि साधुति वीद रागोति।
णामाणि सुविहि दाणं अणगारभदंत दतोति ॥१२०॥

भावार्थ– भले प्रकार चारित्र पालने वाले साधुओ के नाम प्रसिद्ध है। १ आत्मा को तप से परिश्रम कराने वाले श्रमण। २ इंद्रिय व कषायो को जीतने वाले सयत। ३ रिद्धियो को प्राप्त करने वाले ऋषी। ४. स्व पर पदार्थ के ज्ञाता मुनि। ५ रत्नत्रय के साधने वाले साधु। ६ राग द्वेष रहित वीतराग। ७ सर्व कल्याण प्राप्त भदत। ८ इद्रिय विजयी दात।

वट्टकेर स्वामी –मूलाचार

२ परिगृह का त्याग ३ कषायों का जीतना ४ [illegible] ५ आजन्म अहिंसादि व्रत पालन ६ इन्द्रियों का निरोध ७ [illegible] ८ [illegible] उद्यम ६ मन की वृत्ति का निरोध १०. जिनेन्द्र म [illegible] ११ [illegible] पर दया ।

श्री गुणभद्राचार्य–आत्मानुशासन

१९. देवपूजा गुरु पास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः ।
दानंचेति गृहास्थाना षट कर्माणि दिने दिने ।।७।

भावार्थ – देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान, ये षट कर्म गृहस्थो के करने की प्रतिदिन का कर्तव्य है ।

श्री पद्मनंदि मुनि पद्मनंद पच्चीसी

२०. अहिंसैव जगन्माता ऽ हिंसैवा नन्द पद्धति ।
अहिंसैव गति साध्वी श्री रहिं सव शाश्वतं ।।३२।८

२१. अहिंसैव शिवं सूते दत्ते च त्रिदिव श्रियें ।
अहिंसैव हितं कुर्यान्य, सनानि विरस्यति ।।३३।८

भावार्थ – अहिंस्या ही जगत की रक्षिका माता है । अहिंसा ही आनन्द की संतान बढाने वाली है अहिंसा ही अविनाशी लक्ष्मी है । अहिंसा ही उत्तम गति होती है । अहिंसा ही मोक्ष सुख देने वाली है । अहिंसा ही स्वर्ग सुख देती है । अहिंसा ही परम हितकारी है । अहिंसा ही सब आपदाओ को नाश करती है ।

श्री शुभचन्द्राचार्य–ज्ञानार्णव

२२. अतुल सुख निधान ज्ञान विज्ञान वींजं ।
विलय गत कलंक शांत विश्व प्रचारम् ।।
गलित सकल शक विश्वरुपं विशाल ।
भजविगत विकार स्वात्म नात्मन सेव ।।४३'१५

भावार्थ – हे आत्मा तू अपने आत्मा के द्वारा अनतसुख समुद्र केवल ज्ञान के बीज कलक रहित, निर्विकल्प, निशक, ज्ञानापेक्ष, विश्वव्यापी, महान निर्विकार आत्मा को ही भज, उसी का ध्यान कर ।

२३. सकल विषय वीजं, सर्वं सावद्य मूलं ।
नरक नगर केतु वित्त जातं विहाय ।।
अनुसर मुनिवृदा नन्दि सन्तोष राज्यम् ।
भिल वसि यदि त्व जन्म वन्धध्वं पायम् ।।४०।१६

२८. हासी मे विषाद वसे, विद्या मे विवाद वसे कायामें मरण गुरु वर्तन में हीनता ।
शुचि में ग्लानि वसे प्रापति में हानि वसे जय में हार सुन्दर दशा में छवि छीनता ।
रोग वसे भोग में सयोग में वियोग वसे गुण में गरव वसे सेवा माहि दीनता ।
और जगरीत जती गर्भित असाता तेती साता की सहेली है अकेली उदासीनता ।।९:

बनारसीदास–नाटक समयसार

२९. आठ धरें गुनमूल द्वादश वृत गहै तप द्वादशसाधै
चारहुदान पियें जल छान न राति भजें समता रस लाधै :
ग्यारह भेद लहै प्रतिमा शुभ दर्शन ज्ञान चरित्र अराधै :
द्यानत र्श्रेपण भेद क्रिया यह पालत टालत कर्म उपाधैं १९ :

३० जो श्रंर्हत सो जीव सब सिद्ध भणीज्जे आचारज पुनि जीव जीव उवझाय गणिज्जे :
साधु पुरूष सब जीव जीव चेतनपद राजैं सो तेरे घर निकट देख निज शुद्ध विराजे
सब जीव द्रव्य नय एकसे केवल ज्ञान स्वरूपमय तस ध्यान करहु हो भव्य जन जो पावहू पदवी अखम ::

३१. महा मंत्र यहै सार पच पर्म नमस्कार,
भौजल उतारे पार भव्य को अधार है .
विघ्नको विनास करे पापकर्म नास करे,
आतम प्रकाश करे पूर्व को सार है :
दुख चक चूर करे दुर्जन को दूर करे,
सुख भरपूर करे परम उदार है :
तिहुं लोक तारण को आतमा सुधारन को,
ज्ञान विस्तारन को यहै नमस्कार है .:५ :

भैया भगवतीदास–ब्रह्म विलास

इसी विषय में तारण स्वामी क्या कहते है –

३२. पदार्थं पद विन्दन्ते विजनं न्यान दृष्टि तं
स्वरुप सर्वं चिद्रूप विजनं पद विंदक::६५::

भावार्थ-- प्रथम शुद्धात्मा की भावना की जावे और आत्मिक भावों के विरोधी भावो का राग छोड़ दिया जावे । क्योंकि परिणामों से ही बंध व मोक्ष है ।

इससे विषयो की इच्छा छोड़ शास्त्र मनन करो ।

५०. समयं दर्शनं ज्ञानं चरण तप सहि कारिनो ।

समयं प्रवेश अज्ञान व्रत तप मिथ्या संयुत्तं ।।११५।

भावार्थ – सच्चा आगम वही है जो सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, सम्यक्तप, का सहकारी हो । मिथ्या व्रत तप की प्रेरणा करने वाला अज्ञान आगम मे प्रवेश है ।

ज्ञान समुच्चय सार

५१ राग सहावं उत्तं जन रंजन पुण्य भाव संजत्तं ।

अनृत असत्य सहियो राग सयुत्त नरय वासम्मि ।।९२।।

भावार्थ – राग का स्वभाव ऐसा है कि जिसमे लोगो को रजामान करने वाले पुण्य कार्य पूजा, गान, भजनादि किये जाते है यद्यपि वह शुभ काम है पर निश्चय मे अतरग में मिथ्यात भाव भरा हुआ है जो असत्य है ऐसा रागी जीव भी नरक जाता है ।

५२ ज्ञानमई अन्मोय दंशन सहकार चरण अन्मोयं ।

तप अमोय सहावं अवयास अन्मोय सिद्धि संपातं ।।१२२।।

भावार्थ – ज्ञानमई स्वभाव की अन्मोदना, सम्यग्दर्शन को पुष्ट करने वाले चारित्र की अन्मोदना, व जहा तप के अन्मोदना का भाव है वहा सव पदार्थो के जानने वाले केवल ज्ञान की अन्मोदना हो जाती है । ऐसा शुद्धात्मानुरागी सिद्धि को प्राप्त करता है ।

५३ श्रुतच अनेयभेयं वयनं आलाप भये वहुभेय ।

कलसहाव विज्ञानं अनिष्ट अन्मोय सरनि संसारे ।।१३०।।

भावार्थ – शास्त्रो के अनेक भेद हैं । वचनो के आलाप के भी अनेक भेद है । उनको अज्ञानी शरीर के स्वभाव मे आरोपन कर लेता है । इस अनुमोदना से ससार का मार्ग वढाता है ।

५४. गाह दोह छन्दानं सामुद्रिक व्याकर्ण जोय संयुत्त ।

सुरंच श्वास निश्वासं चन्द्र सूर्यंच गहन मज्जलियं ।।१३१।।

५५ प्रपच मिभ्रम सहिय अनेय भेय शरनि संसारे ।

लोकमूढकलरंज कलुप भाव नंत सरनि ससारे ।।१३२।।

भावार्थ:- ऐसे १० प्रकार धर्म [illegible] मे जिनेन्द्र [illegible] रमन करते है उनको भय रहित अभग आनदामृत का स्वाद [illegible]ाता है वे जिनेन्द्र [illegible]ानुभव करते हुये तारन तरन है स्वयं सिद्ध हो जाते है।

धर्म चरण पुष्प

६०. मे मूर्त्त त अर्थ रनन जिन अर्थ ती अर्थ सु समल पयं।
उववन रंजु भय विपक रमन जिन नद रूप मति समल जय
॥९१-६॥

भावार्थ – ज्ञानमूर्ति वे वीतरागी अपने आत्म पदार्थ मे रमन करते है रत्नत्रमयी आत्मा का शुद्ध पद है। वही आत्मा का प्रकाश है, भयो का छय है। वीतरागता मे रमन है। उन्होने शुद्ध पद पाया है। आत्मज्ञान रूपी मतिज्ञान मे रमन करने से केवल ज्ञान का लाभ होता है ॥

भवियन राछरो पुष्प ममत पाहुड

अर्हन्त सिद्ध अरु साधुको नमन करूं करजोर।
गणधर के प्रताप से धर्म चले चहुं ओर ॥१॥
चारो मगल जगत में चारो उत्तम जान।
चारो का शरणा लहे पावे पद निर्वान। २॥
वाणी अगम अथाह है गण धर लहे न पार।
तारण गुरू परसाद से भविजन पावे पार ॥३॥
जिला होशंगावाद में वावई कस्वा ग्राम।
जहां जन्म पायो भले वसे सुहागपुर ग्राम ॥४॥
वालचन्द्र के तनुज दो मिश्री-कुन्दनलाल।
लघु सुत के एकहि तनुज नाम है चपालाल ॥५॥
ग्रंथ रमी वाणी वढै तारण पंथी जान।
तारण ग्रथो का कर मनन तुलना करी वखान ॥६॥
माघ मासतम पंचमी संवत ग्रह द्रव्य जान।
भूल चूक को क्षमाकर वाचो धर कर ध्यान ॥७॥